परमार्थ परिचय

राधास्वामी सत्संग ब्यास

परमार्थ परिचय

परमार्थ परिचय

हेक्टर एस्पॉण्डा डबिन

राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रकाशक :
जे. सी. सेठी, सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास
डेरा बाबा जैमल सिंह
पंजाब 143 204

© 2009, 2016 राधास्वामी सत्संग ब्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित पहला संस्करण 2009

दूसरा संस्करण 2016

मुद्रक :

Translated from the English language edition 'A Spiritual Primer'
© Radha Soami Satsang Beas

Published by:
J. C. Sethi, Secretary
Radha Soami Satsang Beas
Dera Baba Jaimal Singh
Punjab 143 204

© 2009, 2016 Radha Soami Satsang Beas
All rights reserved First edition 2009

Second edition 2016

21 20 19 18 17 16 8 7 6 5 4 3 2 1

ISBN 978-81-8466-512-3

Printed in India by:

विषय सूची

1. हमारी वर्तमान अवस्था	7
2. हमारे कर्मों का फल	18
3. मृत्यु के समय क्या होता है?	22
4. संसार में आवागमन	24
5. मृत्यु की तैयारी	28
6. आध्यात्मिक विकास की ओर	32
7. अनंत असीम सत्ता	37
8. आध्यात्मिक जीवन के पाँच महत्त्वपूर्ण नियम	48
9. देहधारी आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता	50
10. शाकाहार क्यों?	58
11. सादगीपूर्ण नैतिक जीवन	61
12. भ्रामक दृष्टिकोण	70
13. आंतरिक अभ्यास	73
14. प्रेम पर हमारे प्रतिबंध	83
15. राजमार्ग	94

परमार्थ संबंधी पुस्तकें 101

हमारी वर्तमान अवस्था

कौन सुखी नहीं होना चाहता? सुख की आशा एक ऐसी ज़बरदस्त ऊर्जा है जो मानव जीवन को संचालित करती है। फिर भी कितने लोग यह कह सकते हैं कि वे वास्तव में सुखी हैं? क्या यह सच नहीं कि आम तौर पर लोग अपना अधिकांश जीवन सुख की खोज में ही गुज़ार देते हैं? वे चाहते हैं कि यह सुख स्थायी हो, सदा बना रहे। वे सुख को कई तरह से खोजते हैं – रिश्ते-नातों में; कामधंधों में; धन कमाने में; भोग-विलास में; किताबें पढ़ने में; सिनेमा देखने में; नशीले पदार्थों के सेवन में; बाहर होटलों में खाने में; ख़रीदारी करने में; सत्ता, लोकप्रियता और यश पाने में। दरअसल इन सबका संबंध संसार के बाहरी पदार्थों से है; इसका आशय है कि हम यह सोचते हैं कि सुख सांसारिक पदार्थों से ही मिलता है।

कभी-कभी कुछ समय के लिये इनसान को ऐसा लगता है कि उसने वह पा लिया है जिसकी उसे तलाश थी, किंतु दूसरे ही क्षण यह एहसास ही नहीं रहता कि उसने कुछ पाया भी है! समस्या तो यह है कि यदि सांसारिक चीज़ों से थोड़ी-बहुत संतुष्टि मिल भी जाती है तो वह ज़्यादा देर तक क़ायम नहीं रहती। देर-सबेर किसी और चीज़ की ज़रूरत महसूस होने लगती है और फिर से सुख का कोई नया साधन खोजना पड़ता है। जो मिल गया है, उससे तो मन ऊब जाता है और इनसान एक बार फिर,

एक कमी-सी, एक निराशा-सी महसूस करने लगता है। कुछ नया पाने के लिये एक बार फिर वह बाहर संसार में भागदौड़ करता है। अगर एक नई गाड़ी ख़रीदकर हम ख़ुश होते हैं तो साल भर में ही यह ख़ुशी फीकी पड़ जाती है और गाड़ी एक पुराना मॉडल बनकर रह जाती है जो अब मन को इतना नहीं भाती। यही हाल रिश्ते-नातों, व्यापार-व्यवसाय, मनोरंजन आदि का है और हर उस वस्तु का, जो पैसे से ख़रीदी जा सकती है या जीवन को रोमांचित करती है।

अब मन में यह सवाल उठ सकता है – "क्या इस दुनिया में कोई ऐसा सुख भी है जो स्थायी हो, अनंत हो?" मन जवाब देता है, "हाँ, ऐसा सुख संभव है; बस अगर हालात बदल जाएँ तो... मुझे वह पदोन्नति मिल जाए तो... अगर मेरा भार दस किलो घट जाए तो... मुझे सही साथी मिल जाए तो...।" मगर दुनिया में सब कुछ वैसा नहीं होता जैसा हम चाहते हैं और इस तरह एक बार फिर हम असंतुष्टि के घेरे में आ जाते हैं।

इसलिये हमारा अगला प्रश्न यह होना चाहिये – "कहीं ऐसा तो नहीं कि हम सुख की तलाश ग़लत जगह कर रहे हैं?" इसका उत्तर पाने के लिये पहले हमें एक अन्य प्रश्न का उत्तर देना होगा, "मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ?"

यदि हम एक शेर को पकड़कर सर्कस के पिंजरे में बंद कर दें तो क्या हम उस जानवर की वास्तविक शक्ति का अनुमान लगा पाएँगे? यदि हम ताज़े पानी की मछली को समुद्र में डाल दें तो क्या वह ज़िंदा रह पाएगी? शेर क़ैद में तड़पेगा और मछली तो मर ही जाएगी। ऐसा इसलिये होगा, क्योंकि अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार हर जीव की कुछ विशेष आवश्यकताएँ होती हैं। इनसान होने के नाते हमारी आवश्यकताएँ क्या हैं? क्या हम अपनी प्रकृति से परिचित हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम अपनी वास्तविक प्रकृति को पहचानने में ही भूल कर रहे हैं और शायद इसी लिये हम स्थायी सुख पाने में असमर्थ हैं? यदि हम इतना समझ लें कि हम कौन हैं और हमारी वास्तविकता क्या है तो हम जान जाएँगे कि हमें संतुष्टि कहाँ से मिलेगी।

आध्यात्मिकता के प्रति सांसारिक दृष्टिकोण

मनुष्य-शरीर भौतिक तत्त्वों से बना है, इसलिये इसका एक शारीरिक दायरा है; लेकिन इसके अलावा मनुष्य के बौद्धिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक पहलू भी हैं। अपनी वास्तविकता की पहचान करने तथा अपनी पूर्ण क्षमता का अनुभव करने के लिये इन चारों पहलुओं को विकसित करने की आवश्यकता है। इन चार पहलुओं की तुलना कार के चार टायरों से की जा सकती है। यदि एक टायर पंक्चर हो जाए, गाड़ी ठीक तरह से नहीं चल सकती। अधिकतर लोग अपना बहुत-सा समय और शक्ति, शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों के विकास में लगा देते हैं। आम तौर पर ऐसा होता है कि एक पहलू का विकास करते हुए हम दूसरे पहलुओं की ओर ध्यान ही नहीं देते, लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें अपनी महान आध्यात्मिक क्षमता का आभास होता है। वास्तव में बहुत-से लोगों को तो यह अनुमान ही नहीं होता कि उनमें आध्यात्मिक क्षमता भी निहित है जिसके कारण उनके जीवन में संतुलन नहीं आ पाता, ठीक उस कार की तरह जिसका एक टायर पंक्चर हो।

एक सार्थक और सुखद जीवन व्यतीत करने का राज़ इसी आध्यात्मिक पहलू को विकसित करने में है, लेकिन ऐसा करने के लिये हमें अपनी प्रवृत्तियों और अपनी रूढ़िवादी सोच की लीक से हटकर, एक नया मोड़ लेना होगा। रूहानियत की ओर यह नया मोड़ हमें ज़िंदगी जीने का एक नया नज़रिया देगा – एक रूहानी नज़रिया। इसका प्रभाव हमारे दुनियावी आचार-व्यवहार पर पड़ेगा। यह रूहानी नज़रिया हमारे जीवन व्यतीत करने के ढंग में और हमारी मान्यताओं तथा प्राथमिकताओं की परिभाषा बदलने में मदद करेगा। ऐसा करने पर हमारे सामने अपने अस्तित्व की एक सही तस्वीर उभरेगी। इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हम अपनी प्रकृति और महान क्षमता को अच्छी तरह से समझ पाएँगे। यह सूझ हमें वह कुंजी देगी जो हमारे लिये संतुलित और संपूर्ण जीवन के द्वार खोलेगी और हम चिरस्थायी आनंद के भागी बनेंगे। ज़िंदा रहने के लिये जैसे मछली को ताज़े पानी की और शेर को जंगली वातावरण की ज़रूरत होती है,

वैसे ही मनुष्य को अपनी कुशलता और पूर्ण क्षमता विकसित करने के लिये आध्यात्मिक पोषण और आध्यात्मिक जीवन की ज़रूरत है। रूहानियत को फिर से अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाना ही सुखी जीवन की कुंजी है। सुखी, निश्चिंत और तृप्त जीवन का रहस्य, आध्यात्मिक उन्नति को प्राथमिकता देने में ही है।

सांसारिक पदार्थों की कामना

अपनी आध्यात्मिक आवश्यकता को समझने में हमारे सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम दुनिया और इसके पदार्थों में बहुत ज़्यादा लिप्त हैं। हमारी दिनचर्या में आध्यात्मिक चिंतन-मनन करने के लिये समय ही नहीं है। सागर में फेंके गए कॉर्क* की तरह हमारा मन, इंद्रियों के प्रभावों की एक के बाद एक उठनेवाली लहर पर लहराता रहता है। बंदर की तरह यह कभी शांत नहीं बैठता। मन सांसारिक वस्तुओं का अनुभव करने में पूरी तरह से मग्न है। इसके रोम-रोम में इंद्रियों के रस लबालब भरे हुए हैं। हर वक़्त मन पर दुनिया की लालसाओं, सपनों और संभावनाओं की बमबारी होती रहती है।

केवल अपने दायरे तक ही सीमित रहनेवाला हमारा अहं-भाव मन में निरंतर उथल-पुथल मचाए रखता है, क्योंकि मोहवश हम इन्हीं की सोच में खोए रहते हैं – हमारा परिवार, दोस्त, व्यवसाय, धन-संपत्ति आदि। ज़रा सोचिये, इनमें से कुछ भी हमारा न हो तो! हम यह तो जानते ही हैं कि मृत्यु के समय इनमें से कुछ भी हमारे साथ नहीं जाता। सब जानते हैं कि इस दुनिया की कोई भी वस्तु मृत्यु के बाद न तो किसी के साथ गई है और न ही कभी जा सकती है। आख़िरकार हमें यह शरीर भी यहीं छोड़ना पड़ता है; इकट्ठे किये हुए सारे ख़ज़ाने यहीं छोड़ने पड़ते हैं; अपने प्रियजनों को अलविदा कहना पड़ता है। चाहे हमें अच्छा लगे या न लगे, इस स्थूल दुनिया की हर चीज़ को मृत्यु के समय यहीं छोड़ना पड़ता है।

---

* बोतल का ढक्कन जो बलूत वृक्ष की छाल से बना होता है, जो पानी में डूबता नहीं।

सैद्धांतिक रूप से हम यह सब जानते हैं, लेकिन क्या ऐसा भी संभव है कि मृत्यु के समय हमें यह लगे कि जीवन भर हम भ्रम में ही रहे; जिसे हम सच समझते रहे, वह सच की मात्र एक छाया थी? क्या यह संभव है कि हमें यह एहसास हो जाए कि जैसी ज़िंदगी हमने अभी गुज़ारी है, असल में तो ज़िंदगी के मायने कुछ और ही हैं!

हवाई किले बनाना

शेक्सपियर (Shakespeare) ने कहा है कि यह दुनिया एक रंगमंच है। हम सब यहाँ कोई न कोई भूमिका निभाने आए हैं – पति या पत्नी की, बेटे या बेटी की, लेनदार या देनदार की। जब हमारी भूमिका समाप्त हो जाती है, हम नाटक के पात्रों की तरह मंच से नीचे उतरकर अपने 'असली' रूप में वापस आ जाते हैं। रंगमंच की तरह यह दुनिया भी स्थायी नहीं है। अगर हम एक ऐसा श्रेष्ठ दृष्टिकोण विकसित कर लें जो ज़िंदगी का सही और वास्तविक चित्रण हमारे सामने लाए और सांसारिक वस्तुओं का उचित मूल्यांकन करने में हमें सक्षम बनाए, तो यह दृष्टिकोण हमें जीवन में आनेवाले तूफ़ानों से जूझने और उभरने की शक्ति देगा। यह दृष्टिकोण हमें दुनिया की दलदल में धँसे बिना इसमें रहना सिखाएगा। किश्ती पानी पर तैरती है, लेकिन पानी उसमें भरना नहीं चाहिये। यदि किश्ती में पानी भरता है तो किश्ती पानी में ज़रूर डूबेगी।

कितनी हैरानी की बात है कि हम पूरा जीवन उन चीज़ों को पाने के लिये दिन-रात एक कर देते हैं जो कभी हमारी हो नहीं सकतीं! क्या हमने कभी इस सच्चाई पर ग़ौर किया है? माया के छलावों के पीछे भागते-भागते हम थककर चूर हो जाते हैं। माता-पिता, पति-पत्नी, बच्चे, मित्र, धन-संपत्ति, सभी अंत समय साथ छोड़ देते हैं, बल्कि कई बार तो मौत से पहले ही। आख़िरी साँस छूटते ही ये नाते हमेशा के लिये टूट जाते हैं। फिर भी हम जीवन भर इन्हीं के लिये जीते और इन्हीं के लिये मेहनत करते हैं। जब समय निकल जाता है तब एहसास होता है कि हम हवाई किले ही बनाते रह गए! अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत!

खींचतान और धक्कम-धक्का

बहुत-से लोगों का अधिकांश जीवन संतुलन बनाए रखने के प्रयास में ही बीत जाता है, मानों वे दुनिया की भीड़ के धक्कम-धक्के में पैर जमाने के लिये संघर्ष कर रहे हों। ज़िंदगी का तक़ाजा है कि हम पेशेवर बाज़ीगर ही बन जाएँ। हम अपने कामधंधों में निपुण होना चाहते हैं; अपने बच्चों का पालन-पोषण अच्छी तरह करना चाहते हैं; प्रियजनों को प्यार देना चाहते हैं; दोस्तों और परिवार के साथ समय बिताना चाहते हैं और अपने लिये भी समय निकालना चाहते हैं। इस उलझी हुई ज़िंदगी में हम अपने घरों, गाड़ियों, शरीरों, दिलो दिमाग़ और अपनी आत्मा का भी ख़्याल रखना चाहते हैं। हम खेलों में भाग लेना चाहते हैं, तरह-तरह के शौक़ पूरे करना चाहते हैं और विविध रुचियों को भी विकसित करना चाहते हैं। हमें यह सब चाहिये और लगता है कि यही सब काफ़ी नहीं, इसके अलावा हमें चाहिये और पैसा, और नाम, और शौहरत, और धन-संपत्ति वग़ैरह-वग़ैरह! मुश्किल यह है कि ऐसा हो नहीं सकता। ऐसा इसलिये नहीं हो सकता क्योंकि हमारे पास इतना समय ही नहीं है। यदि होता भी तो एक इच्छा की पूर्ति होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है और इस तरह हमारा सीमित समय और क्षमता, हमारी अनगिनत इच्छाओं की माँग कभी पूरी नहीं कर पाते। मन में उठती इन इच्छाओं और तमन्नाओं को हम जीवन के निर्धारित समय में लाख कोशिश करने पर भी कभी पूरा नहीं कर सकते।

संतुलन की प्राप्ति

अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिये यह निश्चित करना ज़रूरी है कि हमारे लिये महत्त्वपूर्ण क्या है। हमें अपनी प्राथमिकताओं पर गहराई से विचार करना होगा। हम संतुलन पाने का प्रयास तो करते हैं, लेकिन हर सराहनीय योग्यता की तरह इसकी प्राप्ति भी अति कठिन है। संतुलन का अभिप्राय है – अपनी अनेक रुचियों में से वास्तविक आवश्यकताओं की पहचान करना, फिर इनके आधार पर अपनी प्राथमिकताओं में फेर-बदल करना।

ऐसा करने के लिये हमें उन धंधों और मोह के बंधनों को जिन्हें हम महत्त्व देते हैं, दरकिनार करना होगा और इसके लिये हमें अपने आप से कुछ कठिन प्रश्न पूछने होंगे। ये प्रश्न ज़रूरी इसलिये हैं, क्योंकि इनका संबंध आत्मज्ञान से है और आत्मज्ञान के लिये जीवन में संतुलन होना आवश्यक है। अपने आप को पहचाने बिना हम जीवन-पथ पर ज़्यादा दूर तक नहीं चल सकते।

आज के समाज की ऐसी मान्यता है कि एक संतुलित जीवन का अर्थ है – हम शादीशुदा हैं; हमारे बच्चे हैं; एक घर है; एक-दो मोटरकारें हैं; अच्छी नौकरी है; कुछ रुचिकर शौक हैं; हम किसी धार्मिक संस्था से जुड़े हुए हैं; सामाजिक गतिविधियों का हिस्सा हैं; स्वस्थ हैं इत्यादि। इस सूची का तो कोई अंत ही नहीं है। वास्तविक संतुलन का इन सब से कोई लेना-देना नहीं, क्योंकि ये सब दुनियावी हैं, बाहरी हैं, जब कि असली संतुलन तो एक आंतरिक अवस्था है। उन लोगों के लिये जीवन में इन बाहरी पहलुओं को संतुलित करना शायद काफ़ी होगा जो एक आम ज़िंदगी जीने में संतुष्ट हैं। परंतु जो जीवन के उद्देश्य के बारे में सोचते हैं, उनके लिये यह काफ़ी नहीं है। वे तो इन प्रतिबंधों से मुक्त होना चाहते हैं, दुनिया के साज़ो-सामान की जकड़ से छुटकारा चाहते हैं, ज़िंदगी की भागदौड़ के पागलपन, इसकी निराशाओं और इसकी विफलताओं से ऊपर उठना चाहते हैं। वे और अधिक भ्रम में न पड़ते हुए, जागरूक होकर, ज़िंदगी की असलियत को जानना चाहते हैं।

यदि हम सजग हो जाएँ, तभी हम जीवन का सही अर्थ समझ पाएँगे। वास्तव में हम जी नहीं रहे, बस ज़िंदा हैं। विचार करें कि इस छोटे-से निर्धारित जीवन काल में (हाल ही के सर्वेक्षण के अनुसार) छः मास हम ट्रैफ़िक सिग्नल के बदलने की इंतज़ार में; एक साल अपनी मेज़ पर पड़ी अस्त-व्यस्त चीज़ों में से खोयी हुई चीज़ों को ढूँढ़ने में, दो साल ऐसे लोगों को टेलीफ़ोन करने में गुज़ार देते हैं जो या तो घर पर नहीं होते या फिर जिनकी टेलीफ़ोन की लाइनें व्यस्त होती हैं; पाँच साल लाइनों में इंतज़ार करते हुए और तीन साल मीटिंगों में बैठकर बिता देते हैं। इस प्रकार हमारा

बहुत-सा समय बेकार चला जाता है। हमारे हाथों से केवल समय ही व्यर्थ नहीं जा रहा, बल्कि हम जीवन को सफल बनाने का वह सर्वोत्तम अवसर भी खो रहे हैं जिसमें हम यह अनुभव कर सकते हैं कि हम वास्तव में कौन हैं और यह भी जान सकते हैं कि हम चाहते क्या हैं।

हम अपने समय का उपयोग कैसे करते हैं और इसे कैसे बिताते हैं, यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस ग़लतफ़हमी का शिकार होकर कि सुखी और संतुलित जीवन के लिये हमें इन सब बाहरी चीज़ों की आवश्यकता है, हम जीवन को व्यर्थ में ही उलझा लेते हैं। सुख और संतुलन के उपायों की खोज करने के लिये बाहर के बजाय हमें अपने अंदर खोज करनी होगी, अपने अंतर में झाँकने की ज़रूरत है।

दुनियावी वस्तुओं, लोगों तथा सांसारिक कार्यों में हमारी तल्लीनता और इनको पाने की निरंतर दौड़, हमें दु:ख और पीड़ा के चक्रव्यूह में उलझा देती है। आध्यात्मिकता को अपने अंदर जाग्रत करना उस सुख और संतुलन को प्राप्त करने का प्रभावशाली साधन है जिसे हम व्यर्थ ही बाहर खोजते रहते हैं। पर कोई ऐसा उपाय करे तो कैसे करे – यह सवाल हमें ख़ुद से पूछना होगा। इसका तर्कसंगत उत्तर यही होगा कि सबसे पहले उन लोगों की मदद ली जाए जिन्होंने इस रहस्य को सुलझा लिया है। हमें उनकी संगति करनी चाहिये जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक क्षमता को जाग्रत कर लिया है और हमें भी ऐसा करना सिखा सकते हैं।

संत-महात्मा

इस संसार में संत-महात्मा ही हमें सिखा सकते हैं कि उस अवस्था को कैसे प्राप्त किया जाए जिसकी हमें तलाश है, क्योंकि वे स्वयं उसे प्राप्त कर चुके होते हैं। जिस सहज अवस्था की हमें खोज है, संत उसके जीवंत उदाहरण हैं।

'संत' शब्द की पाश्चात्य संस्कृति में अनेक ग़लत धारणाएँ हैं। लोग समझते हैं कि संत दुनियादारी से दूर रहते हैं, अव्यावहारिक होते हैं जिन्हें आम जीवन के बारे में बहुत सूझबूझ नहीं होती और वे पारिवारिक जीवन

और सांसारिक कार्यों से उदासीन रहते हैं, लेकिन सौभाग्य से अगर हमारा मिलाप एक पूर्ण संत से हो जाए तो उनके बारे में हमारा दृष्टिकोण ही बदल जाएगा। फिर हम देखेंगे कि पूर्ण संत अपनी दुनियावी ज़िम्मेदारियों से पीछे नहीं हटते, बल्कि वे जो भी करते हैं उसमें एक अनोखी कार्यकुशलता झलकती है। अपने मनोभावों पर, विचारों और कर्मों पर उनका पूरा नियंत्रण होता है, उनके रोम-रोम से असीम शांति और आनंद की किरणें झलकती हैं।

इस पुस्तक में जगह-जगह 'संत', 'महात्मा' और 'आध्यात्मिक गुरु' जैसे शब्द उनके लिये प्रयोग किये गए हैं जिन्होंने संपूर्ण ब्रह्मांड का अनुभव कर लिया है, इसमें समा चुके हैं और उसके हर पहलू को जान गये हैं। संतजन वे हैं जो अपने निजी अनुभव के आधार पर जीवन और मृत्यु जैसे विषयों पर चर्चा करने में समर्थ हैं। अत: वे समझा सकते हैं कि हम अपने जीवन को अधिक सार्थक कैसे बना सकते हैं। वे हमें सही और ग़लत राह की पहचान करने में हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

चूँकि संतों को निजी अनुभव के आधार पर ब्रह्मांड के रहस्यों का ज्ञान होता है, अत: वे ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हैं: मरने के बाद हमारा क्या होता है? हम कहाँ से आए हैं? हम अपनी सीमाओं से कैसे ऊपर उठ सकते हैं? जीवन का लक्ष्य क्या है? क्या परमात्मा का अस्तित्व है? क्या आत्मा है? हम वह आंतरिक सुख और शांति कैसे प्राप्त कर सकते हैं जो हमारे दु:ख और पीड़ा को, ऊब और बेचैनी को, अकेलेपन को तथा अन्य नकारात्मक भावनाओं को हमेशा के लिये दूर करे?

इन सभी प्रश्नों के उत्तर संतों की अनंत काल से चली आ रही शिक्षा में समाहित हैं और यही इस पुस्तक का मुख्य विषय भी है। संतों का उपदेश उनके निजी आंतरिक अनुभवों पर आधारित होता है, न कि पढ़ी-सुनी बातों पर। रूहानियत संतों के जीवन का आधार होती है। इसलिये वे श्रेष्ठ मानवीय गुणों का भंडार होते हैं तथा सामान्य मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर उठ चुके होते हैं। एक विशेष युक्ति द्वारा वे अपनी चेतना को इच्छानुसार, शरीर से अलग कर सकते हैं और पुन: उसमें लौट

सकते हैं। वे मौत को जीत चुके होते हैं और ब्रह्मांड के सभी रहस्यों के ज्ञाता हैं। ऐसे पूर्ण संत हमारे बीच, इस धरती पर, सदैव विद्यमान होते हैं।

संतजन इस संसार में गुरु के रूप में आते हैं, हमें यह याद दिलाने के लिये कि हम वास्तव में कौन हैं। हमें अपने संकुचित दायरों से बाहर निकालने और जीवन की सकारात्मक संपूर्णता दिखाने के लिये आते हैं। वे हिदायत करते हैं कि हम केवल उनकी कही बातों पर यों ही विश्वास न करें, बल्कि ख़ुद परख करें। अमल करके इस शिक्षा की सत्यता की पहचान स्वयं करें।

संत समझाते हैं कि बेशक हम इस शरीर में हैं, लेकिन हम मात्र शरीर नहीं हैं। हमारा अस्तित्व शरीर, मन और आत्मा का अत्यंत सूक्ष्म और अद्‌भुत सम्मिश्रण है जिसमें मूल शक्ति हमारी आत्मा है, मन इसका खोल है और शरीर एक अस्थायी डेरा। जब शरीर मृत हो जाता है, आत्मा का अस्तित्व तब भी बना रहता है। दूसरे शब्दों में मृत्यु हमारा अंत नहीं है। हमारा जीवन, मृत्यु के बाद भी गतिशील रहता है। वे हमें बताते हैं कि वास्तव में ऐसे अनेक मंडल हैं जिनसे आत्मा गुज़र सकती है और यह पूरा ब्रह्मांड, इसके सारे ग्रह, सितारे, आकाशगंगाएँ, रचना के विशाल समुद्र का एक कण हैं। वे हमें समझाते हैं कि जहाँ रचना है वहाँ रचयिता भी है।

ब्रह्मांड की रचना से संबंधित चर्चा में वैज्ञानिकों ने अधिकतर 'बिग बैंग'* के सिद्धांत का समर्थन किया है। आम धारणा है कि वैज्ञानिक ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। लेकिन कई लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि भौतिक-शास्त्र के विशेषज्ञ, महान प्रतिभाशाली वैज्ञानिक, ऐल्बर्ट आइंस्टाइंन (Albert Einstein) इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि ईश्वर का अस्तित्व अवश्य है। उनका कहना था, "मेरे लिये यही काफ़ी है कि मैं समय के दायरे के भीतर और बाहर सक्रिय जीवन की इस अनादि चेतनता के रहस्य पर मनन करूँ; ब्रह्मांड की अद्‌भुत रचना पर चिंतन करूँ

* सृष्टि की रचना से संबंधित सिद्धांत – इस सिद्धांत के अनुसार घनीभूत जड़-पदार्थ का विस्फोट होने पर यह सृष्टि अस्तित्व में आई है।

जिसका हमें धुँधला-सा बोध है और विनम्रता से प्रकृति में प्रकट ज्ञान के एक छोटे-से कण को समझने का प्रयास करूँ।" इसकी प्रतिक्रिया में अमरीकी वैज्ञानिकों के डीन, रॉबर्ट मिलिकन (Robert Millikan) ने अमेरिकन फ़िज़िकल सोसाइटी (American Physical Society) में घोषणा की, "मेरे लिये तो यही परमात्मा की एक पर्याप्त और संतोषप्रद परिभाषा है।"

बीसवीं सदी के सबसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक ऐल्बर्ट आइंस्टाइंन (Albert Einstein) के इस अति प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण कथन की गहराई पर यदि हम विचार करें तो हममें से अधिकतर लोग परमात्मा की सर्वव्यापकता को मान लेंगे। "मेरे लिये यही काफ़ी है कि मैं समय के दायरे के भीतर और बाहर सक्रिय जीवन की अनादि चेतनता के रहस्य पर मनन करूँ; ...ब्रह्मांड की अद्‌भुत रचना पर चिंतन करूँ जिसका हमें धुँधला-सा बोध है और विनम्रता से प्रकृति में प्रकट ज्ञान को समझने का प्रयास करूँ।"

ऐतिहासिक आधार पर प्राय: इस बात पर बल दिया गया है कि विज्ञान और अध्यात्म, स्वाभाविक रूप से एक दूसरे से अलग हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। आइंस्टाइंन जैसे वैज्ञानिकों के लेख यह दर्शाते हैं कि उन्हें 'ज्ञान' था कि समय और स्थान की सीमाओं के परे भी कुछ है, लेकिन वे और अधिक स्पष्टीकरण करने में असमर्थ रहे। दूसरी ओर संत आत्मा के वैज्ञानिक होते हैं। उन्होंने अपनी पूर्ण क्षमता को विकसित कर लिया होता है, वे आत्मविज्ञान के विशेषज्ञ होते हैं और मन-माया से परे के मंडलों का अनुभव कर चुके होते हैं। इसी लिये सर्वाधिक रूप से योग्य होने के कारण, संत अन्य लोगों को भी अपनी पूर्ण क्षमता विकसित करने के लिये निर्देश दे सकते हैं।

हमारे कर्मों का फल

संत हमें समझाते हैं कि अपनी वर्तमान अवस्था को सुधारने के लिये सबसे पहले हमें यह समझना चाहिये कि कौन-से विचार और कर्म हमें शांति और सामंजस्य की अवस्था की ओर ले जाते हैं। हमारी इच्छाएँ विचारों को दिशा देती हैं और विचार हमारे कर्मों को निर्धारित करते हैं। कोई भी कार्य करने से पहले एक इच्छा, एक इरादा या एक प्रेरणा की तरंग मन में उठती है। पहले मन में इच्छा पैदा होती है, फिर मन उस पर विचार करता है और तब किसी भी क्षण उसके अनुसार कार्य करने को विवश हो जाता है।

हमारे व्यक्तित्व के गठन में कर्मों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। बेशक हम कर्म शरीर द्वारा करते हैं, लेकिन ये हमारी सोच का ही नतीजा हैं। अच्छे या बुरे कर्म, सही या ग़लत सोच का नतीजा होते हैं। विचार ही हमारी सफलता या असफलता का मूल आधार होते हैं। हमारी सोच ही हमारे दृष्टिकोण को ढालती है, फिर हमारा दृष्टिकोण ही तय करता है कि हम सुखी हैं या दु:खी। यह दृष्टिकोण, परिस्थितियों से, सफलताओं या विफलताओं से, अमीरी-ग़रीबी, बीमारी-तंदुरुस्ती से कहीं ज़्यादा महत्त्व रखता है। यदि हमारा दृष्टिकोण सकारात्मक है तो हम बुरी से बुरी परिस्थिति को भी अपने हित में बदल लेंगे। यदि हमारा दृष्टिकोण

नकारात्मक है तो हम उत्तम से उत्तम परिस्थिति में भी दु:खी ही रहेंगे। इसलिये जीवन में सुख या दु:ख हमारी प्रतिक्रियाओं का ही परिणाम हैं। वास्तव में हमारे जीवन का चित्र वैसा ही बनता है जैसा रंग हम उसमें भरते हैं; हमारी प्रतिक्रिया ही ज़िंदगी को आकार देती है। अच्छे कर्मों का परिणाम सुख ही होता है, दु:ख नहीं। बुरे कर्मों का परिणाम दु:ख ही होता है, सुख नहीं।

मन कंप्यूटर की तरह काम करता है – इसमें जो कुछ भी भरा जाता है, वही स्क्रीन पर नज़र आता है। सबसे पहले मन में धारणाएँ बनती हैं। फिर उन धारणाओं पर सोचने से इनकी छाप मन पर एक गहरी लीक बनकर छा जाती है। ये लीकें इतनी गहरी हो जाती हैं कि हम इनके अनुसार पूर्वनियोजित ढंग से कार्य करने पर बाध्य हो जाते हैं। इसी लिये यह बहुत ज़रूरी है कि हम अपनी सोच के प्रति सतर्क रहें। अपने विचारों पर हमें कड़ी नज़र रखनी चाहिये और केवल उन्हीं विचारों को पनपने देना चाहिये जो एक सही दृष्टिकोण को विकसित करें तथा जो हमें ऐसे कार्य करने के लिये प्रेरित करें जिनमें हमारी भलाई है।

कर्मों का प्रतिफल – जैसी करनी वैसी भरनी

संत समझाते हैं कि प्रत्येक कर्म की प्रतिक्रिया होती है, भले ही हम परिणाम का अनुभव तुरंत न कर पाएँ। मिसाल के तौर पर, शराब पीकर जब कोई मदहोश हो जाता है तो उसे उसका प्रभाव अगले दिन ही महसूस होता है। लेकिन शराब पीने की बात केवल शराब के प्रभाव तक ही सीमित नहीं है। अब जो भी बुरे कर्म उसने मदहोशी की हालत में किये, उनके हिसाब से उसे दुखदायी और भयंकर परिणाम भोगने पड़ते हैं; उसे जेल हो सकती है या उसकी जान भी जा सकती है। यही नियम एक अच्छे कर्म पर भी लागू होता है। एक व्यक्ति अगर पौष्टिक भोजन लेना और व्यायाम करना शुरू कर दे, तो मुमकिन है कि उसे तुरंत इसके लाभ महसूस न हों, लेकिन इतना ज़रूर है कि समय पाकर उसे निश्चित ही अच्छे परिणाम मिलेंगे।

कर्म चाहे अच्छा हो या बुरा, एक बार कर लिया तो इसका फल अवश्य मिलेगा। परिणामों की प्रतिक्रिया हमें झेलनी ही पड़ेगी, बिल्कुल वैसे ही जैसे फेंके जाने पर बूमरैंग* वापस हमारे पास आ जाता है। जितनी गति से, जितनी ताक़त से बूमरैंग को फेंकते हैं उतनी ही गति और ताक़त से वह हमारी ओर लौटता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, भावनात्मक या व्यक्तिगत सोच नहीं।

न्यूटन (Newton) ने अपने 'गति के तीसरे नियम' में इस सिद्धांत को व्यक्त किया है कि प्रत्येक क्रिया की उतनी ही विपरीत प्रतिक्रिया होती है। विज्ञान में यह नियम बिल्कुल अटल है। यहाँ तक कि एक सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन भी कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न किये बिना हिल नहीं सकता। क्रिया और प्रतिक्रिया का नियम भी यही है। जिस तरह यह भौतिक शास्त्र में लागू होता है, उसी तरह हम पर भी यह क्रिया और प्रतिक्रिया का क़ानून या कर्मों का सिद्धांत लागू होता है। कर्म संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, 'कार्य'। सारे ब्रह्मांड को नियमित कर रहे इस क्रिया और प्रतिक्रिया के सिद्धांत से यह भेद खुल जाता है कि कुछ लोग दु:खी क्यों हैं, जब कि कुछ सुखी हैं; क्यों कुछ निर्धन हैं, जब कि कुछ धनी हैं। केवल इस सिद्धांत के आधार पर ही हम समझ सकते हैं कि संसार में जिसे हम इतना अन्याय समझते हैं, क्यों है।

जो कुछ भी हमारे साथ होता है, वह सब हमारे किये कर्मों का ही फल है। इस नियम में कोई छूट नहीं है। हम इससे बच नहीं सकते। हम ही अपने कर्मों के उत्तरदायी हैं और हमें ही इनके परिणामों को भुगतना है।

संत-महात्मा समझाते हैं कि पूर्वजन्मों के हमारे किये हुए कर्मों का महासागर अथाह है। यह इतना विशाल है कि हम कर्मफल का भुगतान कैसे कर पाएँगे, इसका हिसाब लगाना भी असंभव है। जब हम किसी देहधारी संत या सच्चे आध्यात्मिक गुरु के संपर्क में आते हैं और उनकी

---

* ऑस्ट्रेलिया का कड़ी लकड़ी का एक प्रकार का बाण या हथियार जो चलानेवाले के पास फिर से लौट आता है।

हिदायत पर चलते हैं, तब हमें यह एहसास होने लगता है कि किस तरह हमारे पिछले कर्मों ने हमारी वर्तमान स्थिति को रूप दिया है; यहाँ तक कि हमारे कर्म यह भी निर्धारित करते हैं कि हमें क्या पसंद है और क्या नापसंद। इस प्रकार हम अपने किये हुए कर्मों का दायित्व स्वीकार करना सीखते हैं और इनके परिणामों को सहज भाव से भुगतने का प्रयास करते हैं। आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे हम उन कर्मों की गाँठें खोल लेते हैं जो हमें पिछले कर्मों से बाँधे रखती हैं। हम अपनी प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित रखने में सक्षम हो जाते हैं और उन बुरे कर्मों से बच जाते हैं जो भविष्य में हमारे जीवन में उलझनें पैदा कर सकते हैं।

मृत्यु के समय क्या होता है?

संतों के अनुसार हमारे कर्मों की इतनी प्रधानता है कि इन्हीं का कुल योग यह तय करता है कि हमारी मृत्यु कब और कैसे होगी। डॉक्टर जूलियन जॉनसन (Dr. Julian Johnson) ने अपनी पुस्तक द *पाथ ऑफ़ द मास्टर्ज़ (अध्यात्म मार्ग)* में, जीवन और मृत्यु पर प्रभाव डालनेवाले क्रिया-प्रतिक्रिया के नियम का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। कर्मसिद्धांत पर उनकी चर्चा से उद्धरण लेते हुए हम अपनी बात इस तथ्य से आरंभ करते हैं कि सबको एक न एक दिन मरना है। इनसान या जानवर, अमीर या ग़रीब, तंदुरुस्त या बीमार, कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता। सबको मौत के द्वार से गुज़रना पड़ता है। आत्मा ने जो शरीर धारण किया है उसे वह त्यागना ही पड़ेगा। हम सब जानते हैं कि इस दुनिया को एक दिन तो छोड़ना है, लेकिन कब? यह किसी को नहीं पता।

जब मौत आती है तब आत्मा शरीर से सिमटना शुरू करती है; सिमटाव पैरों के तलवों से लेकर सिर की चोटी तक होता है। सारा शरीर सुन्न हो जाता है। जब आत्मा की चेतन धाराएँ भौंहों के बीच के बिंदु पर केंद्रित हो जाती हैं, तब साँस आना बंद हो जाता है और सारी शारीरिक क्रियाएँ रुक जाती हैं। उस समय आत्मा शरीर को त्याग देती है और व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

मरने के बाद कर्मों के लेन-देन के कुछ अंश को चुकाने के लिये उस व्यक्ति को फिर इस धरती पर आना पड़ सकता है। यदि उसने अपना पिछला जीवन निकृष्ट तरीक़े से बिताया है, तो हो सकता है कि उसे कठिन परिस्थितियों में जन्म लेना पड़े। यदि उसने एक आदर्श जीवन व्यतीत किया है तो भी उसे वापस यहाँ आकर अपने कर्मों का अच्छा फल भोगना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है कि उसके कर्मों, मोह के बंधनों और आध्यात्मिक उन्नति के आधार पर वह अच्छे या बुरे किसी अन्य मंडल में चला जाए और अपने कर्मों के क़र्ज़ के मुताबिक़ निश्चित अवधि के लिये वहाँ ठहरे।

मृत्यु के बाद आत्मा के समक्ष यही संभावनाएँ हैं। हर आत्मा को अगले जन्म में उतना ही प्राप्त होता है जितना उसने अर्जित किया है; उसे अपने कर्मों का फल निश्चय ही भोगना पड़ता है। यदि उसका मन मैला है, नकारात्मक प्रभावों से भरा है तो उन प्रभावों को किसी न किसी तरह जड़ से उखाड़ना होगा। ऐसा कर लेने पर वह आत्मा ऊँचे मंडलों में बेहतर परिस्थितियों की ओर जाने के लिये स्वतंत्र हो जाती है।

कुछ लोग इस बात पर विश्वास नहीं कर पाते कि मृत्यु के बाद भी जीवन है तथा चेतना के अन्य मंडल भी विद्यमान हैं। लेकिन इससे ज़्यादा हैरानी की बात क्या होगी कि इस समय जब हम यह पुस्तक पढ़ रहे हैं, हमारे पैर कहने को तो ज़मीन पर टिके हैं, मगर असल में हम एक ऐसे ग्रह की सतह पर बैठे हैं जो 66,000 मील प्रति घंटे की रफ़्तार से सूर्य के इर्दगिर्द घूम रहा है और वह सूर्य अंधकार में लटका हुआ एक आग का गोला है! यह कोई कहानी नहीं, बल्कि एक सच है। अगर हम इस बात को समझ लेते हैं कि हम जिस तरह इस रचना में मौजूद हैं, वही इतना अविश्वसनीय है तो क्या हम इस बात की संभावना पर ग़ौर नहीं कर सकते कि मौत के बाद जीवन समाप्त नहीं होता और इस ब्रह्मांड में कई दूसरे मंडलों का अस्तित्व भी है?

संसार में आवागमन

संतों के उपदेश पर चलने से, वे मोह के बंधन ढीले होने लगते हैं जो हमें इस संसार से बाँधे हुए हैं। हम ऐसे कर्मों से बचकर रहने की कोशिश करते हैं जो हमें एक और जन्म लेने पर मजबूर करें। यह मानते हुए कि पश्चिमी देशों के लिये पुनर्जन्म का सिद्धांत स्वीकार करना मुश्किल है, डॉ जॉनसन (Dr. Johnson) कहते हैं कि थोड़ा-सा सोच-विचार यह सिद्ध कर देगा कि जीवन के कुछ जटिल प्रश्नों का, पुनर्जन्म का सिद्धांत ही एक तर्कसंगत जवाब है। मिसाल के तौर पर, क्यों कोई अपाहिज वृद्ध एक बोझ बनकर वर्षों तक जीता है, जब कि एक स्वस्थ बच्चे की मृत्यु अचानक ही हो जाती है?

"केवल पुनर्जन्म का सिद्धांत ही इस बारे में संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत करता है। दूसरी तरफ़ ऐसी व्याख्या कर देना कि एक दैवी शक्ति मानव-जीवन के मामलों में मनमाने ढंग से हस्तक्षेप कर रही है, यह कहना केवल निराशा और अविश्वास को आमंत्रण देना है। वास्तव में, माता पिता को समझना होगा कि अपने पिछले कर्मों के कारण ही बच्चे का कम अवधि का जीवनकाल निर्धारित किया गया था और उन्हें इस बात के लिये कृतज्ञ होना चाहिये कि बच्चा उन्हें इतने से समय के लिये 'अमानत' के रूप में सौंपा गया था। बच्चे को अपने पिछले कर्मों के कारण केवल

उतनी ही आयु मिली थी। इस अवधि के समाप्त होने पर उसे जाना ही था। उसके जीवन-यात्रारूपी रंगमंच पर उसका छोटा-सा जीवन केवल एक दृश्य, एक छोटी-सी झलकमात्र ही था। उसे यह छोटी-सी भूमिका निभानी ही थी। यह घटना उसके माता-पिता के जीवन का भी एक भाग थी। माता-पिता और बच्चे, दोनों के पिछले जन्मों के कर्मों के भुगतान हो जाने पर बच्चे के यहाँ अधिक समय के लिये रहने की ज़रूरत नहीं रही, ठीक उसी प्रकार जैसे एक अभिनेता को अपनी भूमिका निभाने के बाद रंगमंच पर रहने की ज़रूरत नहीं रहती।

"ऐसा क्यों होता है कि कुछ व्यक्ति इतनी भयानक शारीरिक विकलांगता के साथ जन्म लेते हैं, जब कि दूसरे जो कम योग्य दिखाई देते हैं, सौभाग्यशाली होते हैं? क्यों कुछ बच्चे जन्म से ही होनहार होते हैं जब कि दूसरे निराशाजनक रूप से मंदबुद्धि? क्यों कुछ व्यक्ति अपराधी प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेते हैं, जब कि अन्य पवित्रता, न्याय और प्रेम की आनंददायक भावना के साथ जीवन में प्रवेश करते हैं? ये सारे और अन्य सैकड़ों प्रश्न हम सबको परेशान करते हैं और इनका कोई उत्तर है भी नहीं। जब हम इन अलग-अलग स्थितियों को अपने पूर्वजन्म के कर्मफल के रूप में देखते हैं, जिनके कारण हमें एक और जन्म लेना पड़ा है तो हमें इन सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं।

"प्रत्येक मनुष्य पूर्वजन्म में किये कर्मों के फलस्वरूप, अपने द्वारा बनाई गई एक निश्चित कार्यसूची लेकर आता है। उस कार्यसूची को उसे पूरा करना ही होता है। जब उस कार्यसूची का अंतिम कार्य पूरा हो जाता है तो दृश्य समाप्त हो जाता है। उसका अंत समय आ जाता है, क्योंकि इसे आना ही है। यह स्पष्ट है कि जब तक उसके जीवन का अंतिम कार्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक अंत नहीं आ सकता। इसके बाद वह दूसरे जीवन में चला जाता है। वहाँ पर भी उसके भविष्य का निर्धारण उसके अपने ही कर्मों के आधार पर होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति युगों-युगों के इस अति विशाल कैलेंडर में अपना समय निश्चित करता है। केवल एक सच्चे देहधारी आध्यात्मिक गुरु से मिलाप के द्वारा ही कर्मों के इस नीरस

तथा निश्चित क्रम को समाप्त किया जा सकता है। एक व्यक्ति को यह सुअवसर अपने पिछले जन्मों के श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप ही मिलता है, इसका अर्थ है कि जीवन-यात्रा के इस लंबे क्रम में अब वह चरम बिंदु पर पहुँच गया है। उसकी मुक्ति अब उसके क़रीब है।"

कुछ कर्मों के फल मामूली होते हैं और कुछ के गंभीर। कभी-कभी तो किसी कर्म का फल इतना भारी होता है कि उसका भुगतान एक जन्म में नहीं हो पाता। तब हमें उन कर्मों का पूरा भुगतान करने के लिये पुनर्जन्म मिलता है। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति किसी की आँखों पर जान-बूझकर तेज़ाब फेंकता है और उसे अंधा कर देता है। अब जिसने तेज़ाब फेंका, उसे शायद अपने किये का अंजाम भुगतने के लिये फिर जन्म लेना पड़ सकता है, क्योंकि यह विनाशकारी कर्म जान-बूझकर किया गया था, इसका परिणाम भी निश्चित ही कोई दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के रूप में होगा या ऐसा भी हो सकता है कि वह अंधा ही पैदा हो। यह एक कठोर न्याय है जो उसके किये कर्मों का ही सीधा परिणाम है।

अपने कर्मों के अंजाम से हम बच नहीं सकते, चाहे वे छिपकर ही क्यों न किये गए हों। किसी न किसी वक़्त अपने कर्मों का नतीजा भुगतना ही पड़ता है। अगर हमारा जन्म कुछ विशेष हालात में हुआ है तो यह हम पर मनमाने ढंग से थोपी हुई बात नहीं है और न ही पूर्वनिश्चित दैवयोग के कारण उत्पन्न हुई है। यह हमारे पूर्वकर्मों का ही सीधा परिणाम है। इसी तरह भविष्य में हम जो भी बनेंगे, वह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम वर्तमान में कैसे कर्म कर रहे हैं।

मृत्यु के बाद के जीवन और पुनर्जन्म के विषय पर अनगिनत किताबें लिखी जा चुकी हैं। बहुत-से लोग जिनको अस्पताल में मृत घोषित कर दिया, लेकिन मरने के बाद वे पुनः जीवित हो गए और वापस आकर उन्होंने अपने अनुभव बताए, डॉक्टरों और चिकित्सकों ने उन पर अनुसंधान किया है जिससे बहुत लोग परिचित हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने सम्मोहन-विद्या (hypnotism) द्वारा भी प्रयोग किये और पाया कि जब उन्होंने अपने रोगियों को उस समय में पहुँचने को कहा जब वे माता के

गर्भ में थे, तो कभी-कभी वे इससे भी पीछे अपने पूर्वजन्म में चले गए। दुनिया में ऐसे कई लोगों के विवरण मिलते हैं जिनको अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान है या जिनमें बहुत ही छोटी उम्र में कुछ विशेष गुण या योग्यताएँ होती हैं, जिन्हें विकसित करने में साधारण रूप से पूरा जीवन लग जाता है। इस प्रकार के उदाहरण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उनमें ये गुण पिछले जन्मों से आए हैं।

जैसा कि पिछले अध्याय में संकेत किया गया था, मृत्यु के बाद आत्मा कई अनुभवों से गुज़र सकती है, धरती पर पुनर्जन्म उनमें से केवल एक है। 'पुनर्जन्म' से तात्पर्य बस इतना है कि अपने पिछले जन्मों के कर्मों का क़र्ज़ चुकाने के लिये आत्मा को चेतनता के इस मंडल में फिर आना पड़ सकता है।

इस पुस्तक का उद्देश्य यह सिद्ध करना नहीं है कि पुनर्जन्म होता है अथवा नहीं या फिर मृत्यु के पश्चात जीवन होता है या नहीं। इस विषय पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है और पाठक अपनी खोज स्वयं कर सकता है। अन्य विषयों की भाँति, संतों की शिक्षा पर भी आँखें मूँदकर विश्वास करने की ज़रूरत नहीं है। हमें संतों की शिक्षा के प्रत्येक पक्ष का गहन अध्ययन करना चाहिये; यह विषय भी दूसरों से भिन्न नहीं है। पुनर्जन्म के सिद्धांत को लेकर पाठक को परेशान नहीं होना चाहिये। संतों के उपदेश से लाभ उठाने के लिये पुनर्जन्म या मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास करना आवश्यक नहीं है। सैद्धांतिक रूप से इस विचारधारा की सत्यता को थोड़ा-बहुत स्वीकार कर भी लें, तो भी इस बात पर विश्वास हमें तभी होगा जब हम अपनी शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठकर स्वयं यह पहचान कर लेंगे कि यह सच है या झूठ।

मृत्यु की तैयारी

हम दूसरों की मृत्यु का तो शोक मनाते हैं, लेकिन शायद ही कभी अपनी मृत्यु के बारे में ध्यान से सोच-विचार किया हो। समझदारी तो इसी में है कि हम अपने अंत की चिंता करें और उस समय जिस परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा, उसके लिये अपने आप को तैयार करें। मृत्यु के द्वार से गुज़रने के बाद हम कहाँ जाएँगे? वहाँ हम किससे मिलेंगे? क्या इन सवालों पर विवेकपूर्ण विचार करना उचित न होगा? धार्मिक ग्रंथ इस विषय पर चर्चा तो करते हैं, परंतु हम उन पर ध्यान कहाँ देते हैं? शायद इसलिये कि हम इन्हें कोरी कल्पनाएँ या कहानियाँ मानते हैं या फिर यह समझते हैं कि यह लोगों को बुरे कर्मों से दूर रखने या अच्छे कर्म करने के लिये प्रेरित करने के साधन हैं। सच तो यह है कि हम सबको मृत्यु का द्वार पार करना ही है। कोई भी इससे बच नहीं सकता। फिर क्यों इस विषय पर हम अपनी आँखें मूँद लेते हैं?

यह स्पष्ट है कि मृत्यु के आ जाने पर ही हम मृत्यु के लिये तैयारी आरंभ नहीं कर सकते। जब तक हमारे पास समय है, तब तक ही तैयारी आसानी से हो सकती है और इस बात को अच्छी तरह समझ भी लेना चाहिये। जैसा कि चीन के महात्मा संत लाओ त्से (Lao Tzu) ने अपनी

पुस्तक *ताओ ते चिंग (Tao Te Ching)* में कहा है, "कठिन को तभी सँभाल लो जब वह सरल है, बड़ी बात को भी पहले से सँभाल लो जब वह छोटी ही है। सभी कठिन बातें शुरू में आसान होती हैं, संसार की सब बड़ी बातों की शुरुआत पहले छोटी बात से ही होती है। हज़ार मील का सफ़र एक क़दम से ही शुरू होता है।"

संत समझाते हैं कि यह पहला क़दम अपने मोह के बंधनों के प्रति सचेत होना है। हमारा मोह ही हमारे लिये दु:ख और पीड़ा का कारण बनता है और यही हमें इस संसार में वापस भी ला सकता है। बाइबल के उद्धरण के अनुसार: "जहाँ तुम्हारा ख़ज़ाना गड़ा होता है, वहीं तुम अपना घर बनाते हो।" हमारा ख़ज़ाना वही है जिसके साथ हमारा सबसे अधिक लगाव है। यदि मृत्यु के समय हमारा मोह इस संसार के लोगों और वस्तुओं से है तो हम इन बंधनों से ऊपर नहीं उठ सकेंगे। चुंबक की तरह ये हमें इस संसार में वापस खींच लाएँगे, क्योंकि हमारा मन ही आत्मा की दिशा निर्धारित करता है।

मोह और विरक्ति के संबंध में बहुत-सी ग़लत धारणाएँ हैं। विरक्ति का अर्थ त्याग नहीं है। कोई व्यक्ति धन-दौलत त्यागने पर भी सारा समय उसी के सोच-विचार में बिता सकता है या फिर कामवासना त्यागने के बाद भी कामुक विचारों में दिन भर डूबा रह सकता है। लोगों और वस्तुओं को अपना बनाने की इच्छा तथा उनकी प्राप्ति की धुन जो मन पर सवार हो जाती है, उस मोह से उभरने को विरक्ति कहते हैं। विरक्ति का यह अर्थ कतई नहीं है कि हम प्यार करना ही छोड़ दें। जब कोई किसी के साथ थोड़ा-बहुत समय बिताता है तो एक रिश्ता जुड़ना स्वाभाविक है। मोह का अर्थ है कि किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ इस हद तक लगाव हो जाए कि उसे खोने के विचारमात्र से ही मनुष्य व्याकुल हो जाए और अपना संतुलन खो बैठे। इसमें शामिल है एक जुनून – 'मैं' और 'मेरी' का जुनून। मृत्यु के समय ये मोह के बंधन उभरकर हम पर इतने हावी हो जाते हैं कि हमारा ध्यान इन्हीं में अटक जाता है जिससे हमें मृत्यु के बाद का सफ़र तय करने में कठिनाई होती है।

अधिकांश लोग इस बात से सहमत होंगे कि जब हमें किसी दूसरे देश की यात्रा करनी होती है, तो आम तौर पर सारा इंतज़ाम हम पहले से ही कर लेते हैं। कम से कम यातायात के साधनों और अपने ठहरने के प्रबंध तो करते ही हैं। इन सांसारिक मामलों में हम कितना सँभलकर चलते हैं; कोई लंबी यात्रा सारे इंतज़ाम किये बिना तय नहीं करते, लेकिन एक वह यात्रा जो हर एक को तय करनी है, उसके लिये बहुत कम लोग तैयारी करते हैं। कौन इस बात पर विचार करता है कि मृत्यु के बाद की यात्रा हमें कहाँ ले जाएगी या उसे बाधारहित बनाने के लिये हम क्या कर सकते हैं?

सदियों से मृत्यु की पहेली को सुलझाने के लिये दार्शनिकों ने अथक प्रयास किये हैं। परंतु सच बात तो यह है कि बुद्धि इस विषय में काम नहीं करती। क्या पढ़े-लिखे, क्या अनपढ़, सभी इसका उत्तर पाने में अपने आप को असहाय पाते हैं। न जाने कितने लोगों के मन में यही विचार आता होगा कि कितना संतोषजनक होता यदि कोई वापस आकर अपना अनुभव हमें बताता! हम मृत्यु के विषय में केवल अनुमान लगाते हैं, लेकिन हमारे विचार काल्पनिक हैं – मनुष्य-जीवन के अंत पर, मृत्यु के निश्चित अंधकार में राहत देने के लिये सुखद मनचाहे विचार।

संतों यानी पूर्ण आध्यात्मिक गुरुओं ने मृत्यु के रहस्य को सुलझा लिया होता है। अभ्यास द्वारा तथा अपनी चेतना के नियंत्रण द्वारा वे प्रतिदिन अपने शरीर से ऊपर उठकर आध्यात्मिक मंडलों की यात्रा करते हैं। उनसे उपदेश लेकर हम भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की युक्ति सीख सकते हैं।

वे उपदेश देते हैं कि मृत्यु से डरना नहीं चाहिये। यह तो केवल शरीर छोड़ने की क्रिया का नाम है। आत्मा का स्थूल इंद्रियों से सिमटकर सूक्ष्म मंडलों में प्रवेश करना ही मृत्यु है। यह तो सिर्फ़ इस शरीररूपी लिबास को उतारने जैसा है। इससे हमारे अस्तित्व का अंत नहीं हो जाता। मृत्यु के आगे भी जीवन है।

संतों ने इस विषय में विस्तार से समझाया है। उन्होंने इस (स्थूल) स्तर से दूसरे (सूक्ष्म) स्तर पर जाने की युक्ति का वर्णन किया है। उनके द्वारा बताई गई साधना की युक्ति को अपनाने से, शिष्य मृत्यु के द्वार को

पार करके इस शरीर में इच्छानुसार लौटना सीख सकता है। केवल अनुभव द्वारा ही कोई मृत्यु की वास्तविकता को जान सकता है। बुद्धि इसे समझ पाने में असमर्थ है।

इस विषय की व्याख्या आंतरिक अभ्यास के अध्याय में विस्तार से की जाएगी। अभी इसे एक ओर रखकर इस सवाल पर ध्यान देते हैं कि हमें सबसे पहले क्या करना चाहिये। यदि किसी के घर को आग लगी हो तो समझदारी इसी में है कि वह जल्दी से जल्दी वहाँ से बाहर निकलने का प्रयास करे, न कि यह सोचने बैठ जाए कि आग कब और कैसे लगी या किसने लगाई। इन सवालों के जवाब बाहर आने के बाद भी ढूँढ़े जा सकते हैं।

6

आध्यात्मिक विकास की ओर

जब तक हम सांसारिक जीवन के पहलुओं और पदार्थों पर ध्यान केंद्रित करके उन्हीं को पहल देते रहेंगे, नि:संदेह हम निराश और असंतुष्ट ही रहेंगे। हम जीवन में वास्तविक संतुलन और स्थायी सुख तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब हम अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर अपनी प्राथमिकताओं को फिर से तय करके उनके अनुसार कार्य करें। यह पहला क़दम उठाना ही हमारे लिये बहुत कठिन है, क्योंकि हमने अपनी प्राथमिकताएँ अपने अस्तित्व की ग़लत धारणाओं पर आधारित कर ली हैं।

हम सोचते हैं कि हम केवल शरीर हैं। यह शरीर दिखाई देता है इसलिये हम इसे ही अपना अस्तित्व मान लेते हैं। परंतु ज़रा सोचिये: हम शरीर में कार्यशील हैं, तो क्या इसका यह मतलब है कि हम मात्र शरीर हैं? यह देह तो हर पल बदल रही है। शुरू में हम छोटे बच्चे थे। इसके बाद 10, 15, 25, 40 या 60 वर्ष की आयु हो जाने पर कौन-सी बात छोटे बच्चे जैसी रह जाती है? कुछ भी नहीं, एक रत्ती तो क्या, तिनका भर भी समानता नहीं रह जाती। फिर भी हमारे मन में एक सोच बैठ गई है कि हमारी वास्तविकता यह शरीर है, क्योंकि दिन भर हम अपना ध्यान स्थूल जगत के दृश्यों और सुनाई देनेवाली आवाज़ों पर ही केंद्रित रखते हैं। सत्य तो यह है कि शरीर में होते हुए भी हम केवल शरीर नहीं हैं;

हालाँकि हम संसार में कई प्रकार की भूमिकाएँ निभा रहे हैं, परंतु हम उन भूमिकाओं तक ही सीमित नहीं हैं।

यदि हम यह मान लेते हैं कि हम केवल शरीर हैं, तो स्वाभाविक है कि हम अपने जीवन को, इसके उद्देश्यों और इसकी प्राथमिकताओं को इसी धारणा के अनुसार ही ढालेंगे। हमारा ध्यान फिर इसी में रहेगा कि कैसे धन, उच्च सामाजिक स्तर, सुरक्षा, सुंदरता, स्वास्थ्य और अन्य बाहरी सफलताएँ हासिल करें। अपने वास्तविक अस्तित्व का बोध न होने के कारण ये प्राथमिकताएँ हमारे मन में घर कर लेती हैं और हमारे विकास को एक संकुचित दायरे में बाँध देती हैं। मनुष्य-जीवन के विकास में तमाम रुकावटों की जड़ अहंकार है। अहंकार का स्रोत इस विचारधारा में है कि हमारी एक अलग पहचान है: हम एक भौतिक जीव हैं जो हर चीज़ का केंद्रबिंदु है। अपने आप तक सीमित हो जाना, अर्थात् 'मैं' 'मेरी' की भावना से ग्रस्त होना ही अहंकार है। यह अहंकार हर एक को अपने वश में करना चाहता है। यह अहंकार ही है जो सब पर अधिकार जमाना चाहता है। जब तक हम अपनी पहचान अपने अहं के आधार पर करेंगे, तब तक हमारे कष्ट और संकुचित दायरे बने रहेंगे।

संत बताते हैं कि हम आध्यात्मिक जगत की आत्माएँ हैं जो एक मानव-जीवन का अनुभव कर रहे हैं, न कि आध्यात्मिकता का अनुभव कर रहे मानवमात्र। इन दो बातों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंतर है जिसकी समझ हमें अपने अस्तित्व की परिभाषा बदलने में सहयोग देगी कि हम कौन हैं। हम आध्यात्मिक जगत के वे अमर जीव हैं जो इस स्थूल जगत में अपना फ़र्ज़ निभा रहे हैं। हम केवल पार्थिव-शरीर नहीं हैं कि मृत्यु के बाद हमारा कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। यदि हम इस बात की पहचान कर लें कि हम जीवात्मा हैं, तो हम अपने लक्ष्य उसी के अनुसार निर्धारित करेंगे और हमारी प्राथमिकताएँ भी अपने आप सही हो जाएँगी।

केवल अहंकार की दीवार ही हमें अपनी आध्यात्मिक प्रकृति से अलग करती है। आध्यात्मिक विकास के लिये हमें अपने अहंकार को एक तरफ़ रखना होगा। हालाँकि ऐसा करना आसान नहीं है। जब तक

हम भय, लोभ, काम, क्रोध, स्वार्थ और अज्ञानता आदि की ईंटों से बनी अहंकार की दीवार को नहीं गिराते, तब तक अपने आप को पहचानने में क़ामयाब नहीं होंगे। अहंकार बहुत बड़ी बाधा है। यह वह बेकार का बोझ है जो हमने अपनी जीवन यात्राओं में एकत्रित किया है और इसे छोड़ने पर ही हम अपने आध्यात्मिक अस्तित्व को पहचान पाएँगे।

कोई व्यक्ति माइकलऐंजेलो (Michaelangelo) की मूर्तियाँ निहार रहा था। उसने अचंभा व्यक्त करते हुए कलाकार से पूछा: "आप ऐसी अद्‌भुत मूर्तियाँ कैसे बना लेते हैं?" माइकलऐंजेलो ने उत्तर दिया: "यह कठिन नहीं है। जो फ़ालतू होता है, मैं बस उसे छील देता हूँ। मूर्तियाँ तो पत्थर में पहले से ही मौजूद हैं।" ठीक इसी तरह रूहानियत में भी, अगर हम इन भारी और जड़ परतों को उतार दें जो हमारी आध्यात्मिक प्रकृति को ढके हुए हैं तो हम सूक्ष्म, हलका और स्वतंत्र महसूस करेंगे। ऐसा नहीं है कि हमें कोई नए गुण धारण करने हैं, बल्कि हममें ये सब पहले से ही विद्यमान हैं। हमें तो केवल इन परदों को हटाना है जिससे हमारी आध्यात्मिक प्रकृति अपने आप ही उभर आएगी।

जो मन को जीत लेते हैं, संसार में रहते हुए भी उनके लिये आध्यात्मिकता ही एकमात्र वास्तविकता रह जाती है। जब तक हम इस संसार के रंग-ढंग में डूबे रहेंगे, हम तनाव और चिंता से नहीं उभर सकेंगे जो आधुनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है। जब तक हम इंद्रियों के इशारों पर नाचेंगे, हम अपने अंतर्निहित असली ख़ज़ाने से दूर होते जाएँगे। जब तक हम बाहर की दुनिया में सुख की खोज करेंगे, हमें निराशा ही मिलेगी। आध्यात्मिक उन्नति से हमारा ध्यान अंदर की तरफ़ मुड़ता है। चेतनता का विकास तभी होगा, जब हम अपने ध्यान को अपने अंतर में तथा ऊपर की ओर ले जाएँगे। क़ुदरती तौर पर मन की प्रवृत्ति नीचे और बाहर की ओर होती है। यदि हम इसकी अवस्था नहीं बदलेंगे, इसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हमें नीचे और बाहर संसार की ओर ही खींचती रहेगी।

संत मानव-स्वभाव के आध्यात्मिक और भौतिक – दोनों पहलुओं की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं, ताकि हम यह तय कर सकें कि हमें किस ओर रुख़ करना है। हमें अपना भविष्य किस दिशा में ढालना है; यह निश्चित करना है कि हमें क्या बनना है। यदि हमें स्थायी सुख और संतोष चाहिये तो संत कहते हैं कि अपना ध्यान अंदर लेकर जाओ और आंतरिक आनंद अनुभव करो। यदि हमें ऊपरी यानी बनावटी ख़ुशी या रोमांच चाहिये जो बिल्कुल अस्थायी है और अंतत: दु:ख देनेवाला है और जिसका परिणाम भी भ्रमपूर्ण है, तो हमें अपनी शक्ति इस संसार में लगानी चाहिये और ख़ुद को इंद्रियों के अधीन कर देना चाहिये। संत साफ़-साफ़ बात करते हैं। हमारी प्राथमिकताओं और चाहतों के परिणामों का वर्णन करते हुए सच्ची या ख़री बात कहने में संकोच नहीं करते।

सांसारिक बंधन

संत कहते हैं कि एक तरफ़ वे लोग हैं जो इच्छाओं और लालसा की आग में झुलस रहे हैं। वे सदा व्याकुल और असंतुष्ट रहते हैं, क्योंकि वे माया का शिकार बनकर इस जगत के क्षणभंगुर पदार्थों में सुख की तलाश करते हैं। मोह, घृणा, काम, क्रोध आदि उनको अंदर से खोखला कर देते हैं और उनकी आध्यात्मिक वृत्ति को धुँधला कर देते हैं। स्वार्थ और घृणा के भाव उन्हें अपनी पसंद और नापसंद की उधेड़बुन में फँसाए रखते हैं। अहंकार, नफ़रत, कामवासना और लोभ की लहरें उन्हें अपने आपे से बाहर कर देती हैं। उनके दिल ख़ाली हो जाते हैं और वे सदैव हताश रहते हैं। भिखारियों की तरह दर-दर भटकते रहते हैं, लेकिन उनकी भूख कभी शांत नहीं होती। वे किसी भी घटना से सच्चाई के प्रति जागरूक नहीं होते, यहाँ तक कि अपने आसपास लोगों को मरते देखकर भी उन्हें होश नहीं आता। उन्हें शरीर एक बाहरी खोल के रूप में नज़र आता है। चूँकि यह शरीर अंत में मिट्टी हो जाना है; उनका जीवन अर्थहीन और खोखला मालूम होता है। जहाँ तक ऐसे लोगों का संबंध है उनके जीवन

में आध्यात्मिक प्रवृति का कोई महत्त्व नहीं, इसलिये इसको विकसित करने का विचार ही पैदा नहीं होता, दरअसल यही वह एकमात्र साधन है जो उनका जीवन सुधार सकता है, क्योंकि उन्होंने तो अपनी अच्छाई को स्वयं इकट्ठे किये भारी बोझ के तले दबा रखा है। संत कहते हैं कि उनके अंदर छिपे दर्द, अशांति और दु:ख को कौन दूर कर सकता है?

आत्मिक आनंद

संत कहते हैं कि दूसरी तरफ़ वे लोग हैं जो इस दुनिया में रहते हुए, अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं। उनको हर पल अपनी आध्यात्मिकता का एहसास होता है और वे सदा इससे जुड़े रहते हैं। वे मायामय संसार में रहते हुए भी उसके छल से भ्रमित नहीं होते। इतने गंभीर होते हुए भी ये लोग सरल जीवन व्यतीत करते हैं। ये किसी को नीचा नहीं दिखाते, किसी का बुरा नहीं सोचते और न ही किसी को धोखा देते हैं। इनकी सोच स्पष्ट होती है और ये बड़े ही कार्यकुशल होते हैं। हर एक के लिये इनके दिल में जगह होती है और ये सबके प्रति सच्चा प्रेम रखते हैं। इन्होंने ही अनमोल मनुष्य जन्म की सही पहचान की है। ये मात्र जीवित नहीं हैं, बल्कि एक सुखी और सार्थक जीवन जीते हैं। ये आध्यात्मिक और सांसारिक दायित्वों में संतुलन स्थापित करके दु:ख और तनाव से ऊपर उठ चुके होते हैं। ये वे लोग हैं जिन्होंने आध्यात्मिकता को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर संतों की हिदायत के अनुसार, अपनी चेतना को संपूर्ण सृष्टि की परमसत्ता में लीन कर लिया होता है।

अनंत असीम सत्ता

स्वर्ग और धरती का स्रोत था वह अनामी।
रहस्यमय और प्राकृतिक,
  था विद्यमान वह,
स्वर्ग और धरती से पहले।
अचल, अथाह, असीम-अनंत;
बदलता नहीं कभी, रहता 'अकेला';
है अनश्वर और व्याप्त सब जगह।
वह है ब्रह्मांड की जननी, उत्पन्न जिससे
  सब कुछ हुआ।
जानता नहीं मैं नाम उसका,
सो पुकारता हूँ मैं उसे 'ताओ'।

ताओ ते चिंग, अध्याय1, 25

विभिन्न संत-महात्माओं ने असीम-अनंत को 'टाओ', 'शब्द', 'वर्ड' (Word) कहा है। वैज्ञानिक इसको 'रचनात्मक ऊर्जा' या 'स्पंदित ऊर्जा' कहते हैं। संत-महात्माओं के समान ही वैज्ञानिक भी बताते हैं कि यह स्पंदित ऊर्जा सब जगह है और इस भौतिक संसार के कण-कण में समाई हुई है।

यही वह ऊर्जा थी जिसने सृष्टि की रचना करने की शक्ति प्रदान की, इसी शक्ति को विज्ञान ने 'बिग बैंग'* का नाम दिया है जिससे सृष्टि का आरंभ हुआ। सिक्खों के तीसरे महान आध्यात्मिक गुरु अमरदास जी कहते हैं:

उतपत परलउ सबदै होवै॥ सबदै ही फिर ओपत होवै॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 117

अर्थात् समस्त सृष्टि शब्द से उत्पन्न हुई है, शब्द में ही विलीन हो जाती है और इसकी उत्पत्ति पुन: शब्द से ही होती है।

आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों इस विषय पर पूर्णतया सहमत हैं कि हमारी सृष्टि की रचना और पालन-पोषण एक सर्वव्यापक अथवा स्पंदनशील शक्ति द्वारा होता है। ईसा मसीह कहते हैं:

> आरंभ में शब्द था और शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था। यही आरंभ से परमात्मा के साथ था। सभी वस्तुएँ उसी के द्वारा उत्पन्न हुईं और कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो उसके बिना उत्पन्न हुई।
>
> बाइबल, जॉन1:1-3

ईसा मसीह द्वारा इस स्पंदनशील शक्ति को 'शब्द' कहना, मात्र एक संयोग नहीं है। किसी भी अन्य ध्वनि के समान यह 'शब्द' भी एक ऐसी शक्ति है जिसमें गूँजती हुई तरंगें हैं और ध्वनि प्रसारित होती है। परंतु अन्य साधारण शब्द से भिन्न इस 'शब्द' में स्वाभाविक चुंबकीय शक्ति है। ईसा मसीह ने जिस 'दिव्य शब्द' की ओर संकेत किया है वह ऐसे प्रतीकों का समूह नहीं है जो किसी भाषा में बोला जा सके, क्योंकि किसी भी भाषा

---

* सृष्टि की रचना से संबंधित सिद्धांत – इस सिद्धांत के अनुसार घनीभूत जड़-पदार्थ का विस्फोट होने पर यह सृष्टि अस्तित्व में आई है।

के शब्द में सृष्टि की रचना करने की शक्ति कैसे हो सकती है? न ही यह किसी धर्मग्रंथ में लिखा हुआ शब्द है – चाहे वह बाइबल हो या कोई अन्य धर्मग्रंथ। इस शब्द का अभिप्राय उस अनंत शक्ति से है जो सभी शक्तियों का स्रोत है, जो परमात्मा का चेतन तथा प्रेममय स्वरूप है, एक ऐसी शक्ति जो निरंतर उसमें से प्रवाहित होती रहती है। यही रचना की जीवन शक्ति है और यह हर चीज़ में व्याप्त है।

जोसफ़ लीमिंग (Joseph Leeming) अपनी पुस्तक *योगा एंड द बाइबल (Yoga and the Bible)* में वर्णन करते हैं: "यह वह शब्द है जिसकी शिक्षा संत शताब्दियों से देते आए हैं। इतिहास में कई शताब्दियों पूर्व, प्राचीन मिस्र के राजगुरु और पादरी इस शब्द के गूढ़ रहस्यों के विषय में दीक्षा देते थे, उनके शिष्यों ने भी शब्द का उपदेश दिया। बाद में प्राचीन यूनान में भी आध्यात्मिक ज्ञान को प्रकट करनेवाले हियरोफ़ैंट्स (Hierophants) द्वारा योग्य जिज्ञासुओं को इसी शब्द का उपदेश दिया जाता था। हियरोफ़ैंट्स ऑरफ़िक (Orphic) और एल्सीनिया (Eleusinian) की गूढ़ विद्याओं का प्रतिनिधित्व करते थे। भारत के पवित्र वेदों और ग्रंथों में भी शब्द का उल्लेख है। प्राचीन फ़ारस में ज़राथूस्ट्रा (Zarathustra) ने आंतरिक शब्द का वर्णन किया है और इसके अभ्यास की शिक्षा दी है। यूनानी भाषा में 'लॉगॉस' कहे जानेवाले शब्द का ज्ञान प्राचीन यूनान के महानतम दार्शनिकों, जैसे पायथागोरस (Pythagoras), हिराक्लाइटस (Heraclitus), सुकरात (Socrates) और प्लेटो (Plato) को भी था। सुकरात ने एक रहस्यमयी आंतरिक ध्वनि सुनने का उल्लेख किया है जिसके द्वारा वह उच्च आंतरिक मंडलों की आनंदमयी अवस्था में पहुँच गए थे। प्राचीन चीन में, इसे 'टाओ' के नाम से जाना जाता था और दार्शनिक लाओ त्से (Lao Tzu) इसका उपदेश देते थे।"

ईसा मसीह ने अपने शिष्यों को इस शब्द का वास्तविक अर्थ समझाया और उनको इसके अभ्यास की दीक्षा दी। जो पाठक ईसा मसीह के उपदेश में शब्द से संबंधित श्रेष्ठ व्याख्याओं को समझना चाहते हैं, वे महाराज चरन सिंह जी की पुस्तकों *लाइट ऑन सेंट मैथ्यू (Light on Saint Matthew)*

और *लाइट ऑन सेंट जॉन (Light on Saint John)* तथा जॉन डेविडसन (John Davidson) की पुस्तक द *गॉस्पल ऑफ़ जीज़स: इन सर्च ऑफ़ हिज़ ओरिजनल टीचिंग्स (The Gospel of Jesus: In Search of His Original Teachings)* का अध्ययन कर सकते हैं। इन पुस्तकों में संकेत दिया गया है कि क्रिश्चियन चर्च के आरंभिक प्रवर्तकों को, इसीन्ज़ (Essenes) और नॉस्टिक्स (Gnostics) को, मिस्र के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लॉटिनस (Plotinus) को तथा ऐलेग्ज़ांड्रिया (Alexandria) के दूसरी और तीसरी शताब्दी के कुछ नियोप्लॉटोनिस्ट (Neoplatonist) संत दार्शनिकों को भी 'शब्द' की शक्ति का ज्ञान था। इस शक्ति का वर्णन मुसलमानों के धार्मिक ग्रंथ क़ुरान में भी है। हज़रत मुहम्मद साहिब के बाद बहुत-से प्रसिद्ध मुस्लिम महात्माओं ने भी, जिन्हें सूफ़ियों के नाम से जाना जाता है, अपने शिष्यों को शब्द के गूढ़ रहस्यों का उपदेश दिया – सूफ़ी संत मौलाना रूम उन्हीं में से एक थे।

स्पष्ट है कि 'शब्द' का उपदेश कोई नई बात नहीं है। उच्च कोटि के संत-महात्मा समझाते हैं कि 'शब्द' का अस्तित्व वास्तव में सृष्टि के आरंभ से ही है और युगों-युगों से ऐसा होता चला आ रहा है। शब्द को भिन्न-भिन्न नाम देकर उन लोगों को इसका उपदेश दिया जाता रहा जो इसे ग्रहण करने के लिये तैयार थे। ब्रायन हाइन्स (Brian Hines) ने अपनी पुस्तक *गॉड्स विस्पर, क्रिएशन्स थंडर: ऐकोज़ ऑफ़ अल्टीमेट रिऐलिटि इन द न्यू फ़िज़िक्स (God's Whisper, Creation's Thunder: Echoes of Ultimate Reality in the New Physics)* में कहा है: "कोई भी व्यक्ति जो शाश्वत सत्य तक पहुँचना चाहता है, उसे चेतना की तरंग पर सवार होना पड़ेगा जो सुनाई देनेवाले स्पंदन के रूप में प्रकट है और यही शाश्वत सत्य की ध्वनि है। यह 'शब्द' हमारे स्थूल कानों से नहीं, बल्कि आत्मा की शक्ति (सुरत) द्वारा सुना जा सकता है। महान संत महाराज सावन सिंह जी कहते हैं, 'इसे आत्मा के कानों द्वारा सुना जा सकता है... यह धुन वास्तव में ईश्वर की करतारी शक्ति है... वह स्वयं को प्रत्येक वस्तु में प्रकट करता है और इस खेल का आनंद लेता है... यह निरंतर हो रहा

संगीत है जो अंतर में गूँजता है... जो हम अंतर में सुनते हैं, यह उसकी प्रतिध्वनि है जिसे सुनकर मन शांत हो जाता है।' एकाग्रता द्वारा हमारी चेतना का स्तर इतना ऊँचा उठ जाता है कि इसे चेतन शक्ति यानी 'शब्द' अपनी ओर आकर्षित करता है। तब आत्मा इसे सुनकर आनंदविभोर हो जाती है। इसे दिव्य संगीत या अनहद नाद कहा जाता है।"*

आंतरिक ध्वनि

हाइन्स (Hines) अपने कथन में कहते हैं: "चेतन शक्ति (शब्द) की सुनाई देनेवाली गूँज का वर्णन अलग-अलग धर्मों, देशों और समय के आध्यात्मिक वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इसके अतिरिक्त शब्द का कोई अन्य स्वरूप क्या हो सकता है? इस परम सत्य के सार को ऐसा कोई भी व्यक्ति अनुभव कर सकता है जो उसके साथ संपर्क करने की विधि जानता है। संत-महात्माओं का शब्द धुन को वर्णन करने का तरीक़ा भिन्न-भिन्न है और यह भिन्नता उनकी संस्कृति और परिस्थितियों की भिन्नता के कारण है। रिचर्ड रोले (Richard Rolle) ने दिव्य धुन की अपनी अनुभूति का इस प्रकार वर्णन किया है:

> शब्द द्वारा अनुभव होनेवाली शांति बहुत सुखद है। एक दिव्य मनमोहक धुन साधक को आनंद से भर देती है। मन इस अलौकिक सहज धुन से मुग्ध हो जाता है और अनंत प्रेम के आनंद का गुणगान करने लगता है... (मुझे अनुभव हुआ) उस दिव्य आध्यात्मिक ध्वनि के प्राणदायी तथा ज्ञान देनेवाले... अद्‌भुत प्रभाव का... जो शाश्वत संगीत से संबंधित है तथा जिसकी मधुर धुन, इन स्थूल कानों द्वारा नहीं सुनी जा सकती। इन ध्वनियों को न कोई जान सकता है न सुन सकता है, लेकिन जो इन ध्वनियों को ग्रहण करता है उसे इस संसार में ख़ुद को निर्मल और विरक्त रखना पड़ता है...

---

* Brian Hines, *God's Whisper, Creation's Thunder,* p 291

कोई भी व्यक्ति जो सांसारिक विषयों में लीन है इसके बारे में कुछ नहीं जानता...।

"यहाँ बीसवीं सदी के सूफ़ी संत हज़रत इनायत ख़ान के कुछ शब्द दिये गए हैं। यह सूफ़ी संत, अंग्रेज़ संत रोले (Rolle) के लगभग 600 वर्ष बाद आए और इस विश्व के दूसरे छोर में रहते थे, परंतु फिर भी उन दोनों का मुख्य संदेश एक ही था:

सूफ़ियों ने इस अनहद धुन को 'सौत-ए-सरमद' कहा है, यह सर्वत्र व्याप्त है... इस धुन के रहस्य को जाननेवाला सारे ब्रह्मांड के रहस्य को जानता है... यह अनहद धुन मनुष्य के अंतर में, आसपास तथा हर तरफ़ निरंतर गूँज रही है। नियम के अनुसार आम तौर पर मनुष्य इसे नहीं सुन सकता, क्योंकि मनुष्य की चेतना पूर्ण रूप से भौतिक रचना में केंद्रित होती है...। जो 'सौत-ए-सरमद' को सुन पाते हैं और उसमें ध्यान लगाते हैं, वे सभी चिंताओं, आशंकाओं, दु:खों, भय तथा रोगों से मुक्त हो जाते हैं और उनकी आत्मा इंद्रियों और भौतिक शरीर के बंधनों से स्वतंत्र हो जाती है। सुननेवाले की आत्मा सर्वव्यापी चेतना में लीन हो जाती है।

"'चीन के टाओवादियों ने उपदेश दिया है कि 'टाओ' या 'शब्द' को, ध्वनि के रूप में अनुभव किया जा सकता है। लिविया कॉहन (Livia Kohn) कहती हैं, 'टाओवादी अध्यात्म दर्शन के सृष्टि विज्ञान के अनुसार टाओ एक विशेष ध्वनि-तरंग है जो सर्वव्यापक है और जिसमें सब कुछ समाया हुआ है' अथवा टाओवादी स्वयं मानते हैं कि 'की' (qi) ब्रह्मांडीय शक्ति का एक विशेष गुण यह है कि वह सबका आधार है और संपूर्ण रचना को सँवारता है।'

"प्लॉटिनस (Plotinus) जो मिस्र के एक महात्मा थे और तीसरी शताब्दी में रोम में दर्शन-शास्त्र की शिक्षा देते थे, उन्होंने लिखा है, 'संपूर्ण ब्रह्मांड में ऊर्जा गतिशील है और कोई भी ऐसा छोर नहीं है जहाँ इसका प्रभाव कम हो।' पीटर गौरमैन (Peter Gorman) लिखते हैं, 'प्लॉटिनस प्राय: ब्रह्मांड का वर्णन एक मधुर ध्वनि के रूप में करते हैं। परंतु उस दिव्य संगीत का निज घर एक ऐसा सहज लोक है जो तीन आयामों वाले ब्रह्मांड की सीमा से परे है, उस लोक की आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन करते हुए प्लॉटिनस अपने दीक्षित शिष्य को तब तक प्रतीक्षा करने का आदेश देते हैं, जब तक वह उस लोक से उत्पन्न होनेवाली सुरीली धुनों को सुन नहीं लेता':

> उदाहरण के तौर पर यदि कोई साधक अपनी मनचाही ध्वनि सुनने की प्रतीक्षा कर रहा हो तो वह सुनाई देनेवाली अन्य सभी ध्वनियों की ओर से ध्यान हटाकर उस एक मनचाही परम सुखद ध्वनि पर ध्यान केंद्रित करेगा; ऐसे ही इस जगत में भी उसे सभी स्थूल ध्वनियों की ओर से ध्यान हटा लेना चाहिये, जब तक इन्हें सुनना अति आवश्यक न हो तथा अपनी विवेक शक्ति को विशुद्ध करके उच्च मंडलों से आती हुई धुन को सुनने योग्य बनाना चाहिये।
>
> प्लॉटिनस

"बहुत-से अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं कि दिव्य धुन के साथ चेतना को जोड़ने का प्रयास हर सच्चे धर्म और आध्यात्मिक साधना का आधार समान रहा है। कई शताब्दियों से अनेक संस्कृतियों में ध्यान एकाग्र करने की साधना के प्रयोग अनेक बार दोहराए गए हैं और सत्य की गंभीरता से खोज करनेवालों के द्वारा बताए गए परिणाम भी सदा एक समान रहे हैं। 'शब्द', 'टाओ', 'सौत-ए-सरमद' अथवा 'होली घोस्ट' – (नाम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं) – की सर्वव्यापी चेतन ऊर्जा को आध्यात्मिक स्पंदन के रूप में अनुभव किया जा सकता है।"

आंतरिक प्रकाश

"और हाँ! यह बात भी सही है कि परमात्मा का प्रकाश उस दिव्य ध्वनि से अलग नहीं है। महाराज सावन सिंह जी कहते हैं कि प्रकाश और ध्वनि, दोनों 'शब्द' में से ही निकलते हैं। इस भौतिक संसार में तो वह प्रकाश और ध्वनि, जड़ माया में ही खो गए हैं। इस धुन को ऊपर के श्रेष्ठ मंडलों में सुना जा सकता है और प्रकाश को देखा जा सकता है। उच्चतम मंडलों में यह सुरीली ध्वनि इतनी मनमोहक है जिसे मनुष्य ने स्थूल कानों द्वारा न तो कभी सुना होगा और न ही कभी सुन सकता है। उस दिव्य प्रकाश की एक किरण में लाखों सूरज और चंद्रमा का प्रकाश है।' यद्यपि शब्द की शक्ति में प्रकाश और ध्वनि दोनों ही समाहित हैं, परंतु पूर्ण संत प्राय: ध्वनि को अधिक महत्त्व देते हैं जो ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति है। द बुक *ऑफ़ जैनेसिस (The Book of Genesis)* में हमें बताया गया है: 'और परमात्मा ने कहा, प्रकाश हो जाए: और प्रकाश हो गया।' इस कथन से स्पष्ट है कि परमात्मा की आवाज़ उसके प्रकाश से पहले आई। एक नया साधक साधना में उसी ध्वनि का अनुभव करता है जो 'शब्द' की पहली विशेषता है।

"फिर भी ईश्वरीय सत्य तक पहुँचने की यात्रा में आध्यात्मिक खोजी जब चेतना के ऊँचे मंडलों से गुज़रता है, ध्वनि और प्रकाश दोनों उसके साथ-साथ रहते हैं। पूर्ण संत-महात्माओं के अनुसार यह ध्वनि प्रकाश में से आती है और प्रकाश ध्वनि में से आता है। विद्युत की आकर्षण शक्ति भी ठीक इसी प्रकार काम करती है; जैसा कि वैज्ञानिक हेज़न (Hazen) और ट्रेफ़िल (Trefil) कहते हैं, 'विद्युत और उसका आकर्षण दोनों एक ही अद्‌भुत घटनाक्रम के दो अभिन्न पहलू हैं: इन्हें एक दूसरे के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता।' इसी प्रकार शब्द भी दो रूपों में प्रकट होता है ताकि वह जीवात्मा को निज घर का रास्ता दिखा सके। महाराज चरण सिंह जी लिखते हैं, 'शब्द में ध्वनि और प्रकाश दोनों ही मिले हुए हैं। ध्वनि के द्वारा वह दिशा निश्चित होती है जहाँ से वह आ रही है और प्रकाश हमें उस ओर ले जाने में सहायक होता है।'

"...महाराज सेठ शिवदयाल सिंह (स्वामी जी महाराज) समझाते हैं कि पाँच आध्यात्मिक ध्वनियों के अनुसार आंतरिक जगत के पाँच मंडल हैं। 'हर एक मंडल की एक विशेष ध्वनि है जो एक दूसरे से भिन्न है। आत्मा एक मंडल की धुन को पकड़कर उसी के सहारे एक के बाद दूसरे मंडल में पहुँचती है।'"

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम शब्द को देख या सुन क्यों नहीं सकते? हाइन्स (Hines) ने पिछले प्रकरण में कहा है, "भौतिकशास्त्री निक हरबर्ट (Nick Herbert) टिप्पणी करते हैं कि देखने और सुनने की इंद्रियों में बहुत अधिक समानता है, क्योंकि दोनों का कार्य विशेष तरंगों की गतिशीलता को अनुभव करना है। वह कहते हैं, 'स्थूल दृष्टि 400 से 700 नैनोमीटर (मीटर का एक अरबवाँ हिस्सा) के बीच की गति रखनेवाली 'विद्युत आकर्षण शक्ति के स्पंदनों की अपनी क्षमता है जिसे दूसरे शब्दों में प्रकाश कहा जाता है'... हमारे स्थूल कान 20 चक्र से 20,000 चक्र प्रति सैकेंड तक की ध्वनि तरंगों की गतिशीलता सुन सकते हैं।' मानव शरीर इन सीमाओं से परे की तरंगों को अनुभव करने में असमर्थ है।

"शब्द परमात्मा की मायारहित रचना शक्ति है, इसी लिये स्थूल आँखों या कानों से इसे देखा या सुना नहीं जा सकता, भले ही कान, आँख आदि इंद्रियाँ कितनी ही संवेदनशील क्यों न हों। असल में भौतिक जगत की गतिविधियों और दृश्यों की अनुभूति हमारी चेतना के उस बिंदु को बाहर तथा नीचे की ओर खींचती है, जहाँ से शब्द से संपर्क किया जा सकता है। हम अपनी आत्मा की इस शक्ति को नहीं पहचानते, क्योंकि हमारा ध्यान एकाग्र होने के बजाय इधर-उधर फैला हुआ है। जिस प्रकार गैसोलीन या पैट्रोल के एक टैंक में समाई शक्ति को यदि एक अकेले प्रोटोन पर केंद्रित किया जाए तो यह महाशक्ति के बराबर हो जाती है, उसी प्रकार यदि हमारी चेतना अंतर्मुखी होकर एक बिंदु पर एकाग्र हो जाए तो इसका शब्द के साथ जुड़ जाना संभव है। जैसा कि ईसा मसीह ने कहा है, 'अगर तुम एक आँख वाले हो जाओ तो तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश से भर जाएगा' (*मैथ्यू*, 6:22) और ध्वनि से भी।"

"महाराज सावन सिंह जी के वचन हैं, 'शब्द की गूँज कण-कण में हो रही है लेकिन हम इसे सुन नहीं पाते, क्योंकि हम अंतर में इससे जुड़े हुए नहीं हैं।' इस आंतरिक शक्ति से संपर्क करने में रुकावट कौन-सी है? सिर्फ़ एकाग्रता की कमी। पूर्ण ज्ञान, परम आनंद और प्रेम हमारे अंतर में हैं, कहीं बाहर नहीं हैं। फिर भी हमारा लगभग सारा ध्यान बाहर विषय-विकारों, विचारों, कल्पनाओं और भावनाओं में फैला हुआ है। इसलिये आंतरिक मंडलों के बारे में हमें कुछ पता नहीं लगता। भले ही हम अपनी आँखें बंद भी कर लें और संसार की ओर से अचेत हो जाएँ, तब भी अपने भौतिक शरीर का एहसास तो रहता ही है। यह एहसास ही हमें बाहरी अधूरे जगत से बाँधे रखता है।

"महाराज चरण सिंह जी लिखते हैं, 'शब्द तो इस समय भी हमारे अंदर है। आत्मा शब्द की एक किरण है और यही आत्मा हमारे शरीर में फैली हुई है। हमें अपनी चेतना को वापस तीसरे तिल पर लाना है ताकि वह शब्द के साथ जुड़ सके, फिर शब्द आत्मा को ऊपर की ओर खींच लेगा। शब्द तो हर जगह है, मगर हमें अपनी आत्मा को उस स्तर तक लाना है जहाँ से शब्द आत्मा को चुंबक की तरह ऊपर खींच सके।'

"...सुमिरन और ध्यान की साधना आत्मा को चेतना के उस स्तर तक पहुँचा देती है जहाँ वह शब्द की सर्वव्याप्त चेतन शक्ति से जुड़ जाती है। इसकी कुछ समानता एक अंतरिक्ष-यान को अंतरिक्ष में छोड़े जाने से की जा सकती है। कल्पना करें कि आत्मा एक नियंत्रण करनेवाला यान है जिसे अंतरिक्ष में ऊपर उठाना है। मन वह शक्तिशाली रॉकेट है जिसके ऊपर यान टिका हुआ है। हमारा शरीर यान को छोड़े जानेवाला स्थान तथा आधार है जो अंतरिक्ष-यान के विभिन्न भागों को सहारा देता है। मूल लक्ष्य, सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है – नियंत्रण करनेवाले यान अर्थात् आत्मा को एक ऊँचे कक्ष में स्थापित करना।

"इस उद्देश्य की तैयारी में हमारा शरीर आत्मारूपी यान के ऊपर छोड़े जाने के आधार-स्थान के रूप में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आख़िर हमारे शरीर की इंद्रियाँ ही वह साधन हैं जिनके द्वारा हम आध्यात्मिक साधना

तथा आध्यात्मिक विज्ञान की अन्य खोज की विधियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार अंतरिक्ष-यान ऊपर उठते समय, अंतिम क्षणों में आधार देनेवाले उपकरणों से अलग हो जाता है, उसी प्रकार चेतना के ऊँचे लोकों की ओर आध्यात्मिक उड़ान भरने से पहले, हमें भी शरीर सहित सभी भौतिक पदार्थों से अलग होना होगा। इस उड़ान को भरने की शक्ति आरंभ में मन से प्राप्त होती है और यह मन स्थूल इंद्रियों तथा संसार संबंधी विचारों से ऊपर उठने में शक्ति देनेवाले इंजन के रूप में कार्य करता है।

"सुमिरन और ध्यान की अवस्था में साधक उन शब्दों को दोहराता है जो चेतन सत्ता के मंडलों से संबंध रखते हैं। इससे धीरे-धीरे मन रचना के सबसे निचले क्षेत्र से ऊपर की तरफ़ खिंचने लगता है। अंतरिक्ष-यान को ऊपर की ओर धकेलने वाले रॉकेट, पहले यान को आधार-स्थान से धीरे-से ऊपर उठाते हैं, फिर गति को निरंतर तेज़ करते हुए यान को ऊपर की ओर धकेलते जाते हैं, जब तक वह अदृश्य नहीं हो जाता। आत्मारूपी नियंत्रण करनेवाला यान मनरूपी इंजन पर नियंत्रण रखता है, परंतु मन की शक्ति के बिना यह ऊपर नहीं उठ सकता...।

"फिर एक निश्चित ऊँचाई पर पहुँचने के बाद वे रॉकेट धीरे-धीरे यान से अलग होने लगते हैं और नियंत्रण करनेवाला यान अपनी ही शक्ति द्वारा आगे को उड़ान भरता है। इसी प्रकार (एक निश्चित स्तर पर) आत्मा मन का साथ छोड़ देती है... और तब शब्द आध्यात्मिक उड़ान के लिये प्रेरक शक्ति बन जाता है। यह शक्ति एक धुन के रूप में सुनाई देती है और प्रकाश के रूप में दिखाई देती है। यह दिव्य शब्द ही सृष्टि के प्रत्येक भाग में शक्ति का संचार करता है। महाराज चरण सिंह जी कहते हैं,... 'यह धुन न केवल हमें रास्ता दिखाती है, बल्कि वास्तव में हमें परमपिता के पास वापस भी ले जाती है। पहले हम इसके पीछे-पीछे चलते हैं; फिर जैसे-जैसे हम अंतर में ऊँचे स्तरों को पार करते हैं, हम इसमें समा जाते हैं और इस पर सवार होकर शब्द धुन के द्वारा निज धाम की ओर आगे बढ़ते हैं। शब्द एक चुंबक के समान आत्मा को अपनी ओर खींच रहा है और निज धाम की ओर आकर्षित कर रहा है।'"

8

आध्यात्मिक जीवन के पाँच महत्त्वपूर्ण नियम

संतों का हमारे प्रति बहुत ही सकारात्मक और आशावादी दृष्टिकोण है। हालाँकि उन्हें हमारी दयनीय दशा और वर्तमान विकट अवस्था की जानकारी है, लेकिन वे केवल यही देखते हैं कि हम क्या बन सकते हैं। वे जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रकाश और आनंद से भरपूर एक संपूर्ण व्यक्ति बन सकता है। वे यह भी जानते हैं कि अधिकतर लोग इस सच्चाई से अनजान हैं, क्योंकि हमारे मन पर सांसारिक मोह के बंधनों के बादल छाए हुए हैं और हमारा मन बुरे कर्मों में इस हद तक लिप्त हो चुका है कि हमें यह सूझता ही नहीं कि हम असली सुख-शांति कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं।

एक बार हमें अपने अंदर मौजूद शक्ति का ज्ञान हो जाए, फिर हम क़ुदरती तौर पर अपने अंदर पारमार्थिक गुणों का विकास करने का प्रयास करेंगे। निश्चय ही हम ऐसे अच्छे कर्म करेंगे जो आत्मिक उन्नति में सहयोगी हों और उन बुरे कर्मों से बचेंगे जो हमारे आत्मिक विकास में बाधा डालते हैं।

लक्ष्यप्राप्ति की राह पर जो विघ्न हमारे सामने आते हैं, उनसे बचने के लिये संत हमें पाँच मुख्य नियमों का पालन करने पर बल देते हैं।

1. एक सच्चे जीवित गुरु के उपदेश पर अमल करना;
2. मांस, मछली, अंडे आदि से परहेज़ करना;
3. ईमानदारी के साथ सदाचारी जीवन जीना;
4. शराब, ड्रग्ज़ धूम्रपान, हर तरह के तंबाकू और नशीले पदार्थों से परहेज़ रखना;
5. प्रतिदिन ढाई घंटे भजन-सुमिरन करना।

ये हैं वे पाँच महत्त्वपूर्ण नियम जो हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्ति को क़ायम रखेंगे। ये ही वे अभ्यास हैं जो हमें पतन से बचाएँगे तथा हमारा विकास करेंगे। इन बातों को अमल में लाए बिना हमें यह परख करना मुश्किल होगा कि कहीं हम भटक तो नहीं गए। रेल की पटरी की तरह या राजमार्ग पर खिंची लाइनों की तरह ये निर्देश हमें अपने आध्यात्मिक पथ पर सही दिशा में चलने में मदद करते हैं और ये हमारे जीवन को भी दिशा देते हैं। जब हम इन निर्देशों का पालन नहीं करते तो हमें यह जान लेना चाहिये कि हम अपने लक्ष्य से दूर जा रहे हैं। अपनी आध्यात्मिक उन्नति को दृढ़ करने में, उसकी रक्षा करने में और उसे बढ़ाने में, ये पाँच महत्त्वपूर्ण नियम हमारा बहुत ही उत्तम तथा व्यावहारिक मार्गदर्शन करते हैं।

9

देहधारी आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता

जब से इस धरती पर मानव–जाति अस्तित्व में आई है, तभी से हमें जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझाने के लिये आध्यात्मिक गुरु या संत–महात्मा भी आते रहे हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्द – संत और आध्यात्मिक गुरु – उनके लिये हैं जिन्होंने अपने मन पर विजय पा ली है, अपनी चेतना को उच्चतम रूहानी मंडलों तक ऊपर उठा लिया है, ईश्वर के वास्तविक रूप को प्रत्यक्ष देख लिया है तथा ईश्वर से एकरूप होने की अवस्था प्राप्त कर ली है।

संतों के उपदेश का प्रथम तथा आधारभूत सिद्धांत यह है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिये हमें एक देहधारी गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता है। गाड़ी चलाना सीखने जैसे एक साधारण से काम के लिये भी हमें उस्ताद की ज़रूरत होती है। यदि हम हवाई जहाज़ उड़ाना सीखना चाहते हैं तो केवल जहाज़ उड़ाने की निर्देश–पुस्तिका और ऐसी अन्य पुस्तकों को पढ़कर हम हवाई जहाज़ उड़ाना नहीं सीख सकते। यदि विमान उड़ाना सीखते समय हमारे साथ प्रशिक्षक (ट्रेनर) न हो तो विमान दुर्घटनाग्रस्त हो जाएगा। फिर आप ख़ुद ही सोच लीजिये कि एक देहधारी गुरु की

क़दम-क़दम पर कितनी अधिक आवश्यकता होगी, ये सब सीखने के लिये कि – अपने दैनिक जीवन की जटिल कठिनाइयों से हम सही सलामत कैसे बाहर निकलें, अपना संतुलन खोए बिना संसार की जटिलताओं का सामना कैसे करें और इसके साथ ही यह भी सीखने के लिये कि अंतर के सूक्ष्म मंडलों में कैसे प्रवेश करें और उन्हें कैसे पार करें जिनमें से इस आत्मा को भौतिक शरीर छोड़ने के बाद गुज़रना पड़ता है।

आध्यात्मिकता एक बहुत गूढ़ और जटिल विषय है। उन आंतरिक मंडलों में यात्रा करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे साथ एक ऐसा मार्गदर्शक हो जो उन मंडलों से परिचित हो और जो स्वयं उन मंडलों की यात्रा करता हो। जब तक हम किसी ऐसे व्यक्ति के संपर्क में नहीं आते जो इन आंतरिक मंडलों का पूरी तरह से जानकार हो और जिसके अनुभव से हम लाभ उठा सकें, तब तक हमें इस दिशा में एक क़दम उठाना भी मुश्किल होगा।

इस संसार में कोई भी व्यक्ति – चाहे वह कितना ही बुद्धिमान, प्रेमी या धार्मिक वृत्ति वाला क्यों न हो, इन आंतरिक मंडलों तक पहुँचने में तब तक हमारी सहायता नहीं कर सकता, जब तक वह स्वयं उन मंडलों से न गुज़रा हो। जिस प्रकार बाहरी संसार में किसी अनजान और ख़तरनाक क्षेत्र में यात्रा करते समय हमें किसी मार्गदर्शक की ज़रूरत पड़ती है, उसी प्रकार आंतरिक मंडलों में भी हमें मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। जब तक किसी ने स्वयं इन आंतरिक सूक्ष्म मंडलों को पार न किया हो, तब तक हमें कैसे विश्वास आ सकता है कि मृत्यु के उस पार भी हमारी उससे भेंट हो सकती है। इसी प्रकार जब तक किसी व्यक्ति ने स्वयं ईश्वर से मिलाप न किया हो, वह हमें कैसे उस ईश्वर तक पहुँचा सकता है?

वास्तव में हमें जन्म से ही गुरु की आवश्यकता होती है। चाहे घर में, स्कूल में अथवा जीवन में, हम दूसरों से ही भलीभाँति सीख सकते हैं। इस दुनिया में शायद ही कोई ऐसा हुनर या पेशा होगा जिसमें गुरु के बिना कुशलता प्राप्त की जा सकती है। फिर भला आध्यात्मिक विज्ञान जैसे अति कठिन विषय को गुरु के बिना सीखने की कल्पना कैसे कर

सकते हैं? इस संसार के अन्य किसी भी विषय की तुलना में आध्यात्मिक विज्ञान सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण है तथा इसे समझने के लिये गुरु की बहुत आवश्यकता है। हमें ऐसा गुरु चाहिये जो न केवल इस जीवन में ही हमारा मार्गदर्शन करे, बल्कि हमारे साथ रहकर मृत्यु के बाद भी हमारा मार्गदर्शन करे।

जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि हम किसी मनुष्य से ही अच्छी तरह सीख सकते हैं और यह भी कि आध्यात्मिकता कोरा अंधविश्वास नहीं है, बल्कि दूसरे विज्ञानों की तरह ही एक विज्ञान है, तब हम आध्यात्मिक गुरु के महत्त्व को समझने लगते हैं और उनकी ज़रूरत स्वीकार कर लेते हैं। महान संत-महात्मा इस संसार में केवल इसी कार्य के लिये आते हैं। वे इस भौतिक संसार को अधिक अच्छा बनाने के लिये नहीं आते, बल्कि हमें आध्यात्मिक अनुभूति का मार्ग बताते हैं ताकि वे जीवन-मृत्यु के अंतहीन बंधन से हमें मुक्ति दिला सकें। यह तर्क नीचे दिये गए दृष्टांत से स्पष्ट हो सकता है:

आओ थोड़ी देर के लिये कल्पना करें कि एक जेल में बहुत-से क़ैदी हैं। एक परोपकारी वहाँ आता है और यह देखकर कि क़ैदियों को गर्मी के महीनों में पीने के लिये ठंडा पानी नहीं मिलता, वह उनके लिये रोज़ बर्फ़ भिजवाने का प्रबंध कर देता है। दूसरा आता है और यह देखकर कि उन्हें घटिया और बेस्वाद खाना मिलता है, वह उनके लिये लगातार स्वादिष्ट पकवान बँटवाने का प्रबंध कर देता है। एक तीसरा परोपकारी आता है और क़ैदियों पर तरस खाकर उन्हें सर्दियों के मौसम में गरम कंबल देने का प्रबंध कर देता है। नि:संदेह तीनों परोपकारी जेल में रहनेवालों के कष्टों को कुछ सीमा तक कम करने में सफल हुए हैं, परंतु क़ैदी तो फिर भी क़ैदी ही रहे। वे अभी भी जेल में ही हैं। जेल की ऊँची-ऊँची दीवारें उन्हें अभी भी बाहर की दुनिया से अलग किये हुए हैं और आज़ाद होने की आशा अभी भी उनके लिये एक कोरी कल्पना है।

उसके बाद एक और परोपकारी वहाँ आता है। उसके पास जेल के दरवाज़े की चाबी है। वह दरवाज़ा खोल देता है और क़ैदियों को मुक्त

कर देता है ताकि वे आज़ाद होकर वापस अपने घरों में जा सकें। नि:संदेह उस अंतिम व्यक्ति का परोपकार, क़ैदियों की जेल से आज़ादी की इस वास्तविक आवश्यकता को पूरा कर देता है जो पिछले तीनों परोपकारी नहीं कर सके।

संत प्राय: इस दुनिया को एक बहुत बड़ा जेलख़ाना बताते हैं। इस जेलख़ाने से बाहर निकलने का केवल एक ही द्वार है – मनुष्य-जीवन – और इसके रहस्य की जानकारी केवल संतों के पास है। इसलिये केवल संतों के पास चाबी है और वे ही यह द्वार खोल सकते हैं। बचाव के उस गुप्तमार्ग का, जो मुक्ति का आंतरिक आध्यात्मिक मार्ग है, केवल संत ही उसका मार्गदर्शन कर सकते हैं और हमें दु:खों से छुटकारा दिला सकते हैं। संतों के अलावा कोई और यह काम नहीं कर सकता।

नि:संदेह प्राचीन काल के संत-महात्मा सच्चे आध्यात्मिक गुरु थे, परंतु इस समय हम उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते। हमें आज के समय के एक देहधारी गुरु की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक बीमार व्यक्ति को एक जीते-जागते डॉक्टर के परामर्श की आवश्यकता होती है और वह बीते हुए समय के किसी डॉक्टर से इलाज नहीं करा सकता, भले ही वह डॉक्टर कितना ही प्रसिद्ध क्यों न रहा हो, ठीक इसी तरह हमें भी एक देहधारी आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता होती है। केवल एक देहधारी आध्यात्मिक गुरु ही उलझन भरे जीवन की जटिलताओं को सुलझाने में हमारी सहायता कर सकता है।

अंतर में आत्मा की वास्तविकता से हमें परिचित कराने के लिये एक देहधारी गुरु का होना आवश्यक है। यदि हम देहधारी गुरु के बिना ईश्वर से मिलाप कर सकते, तो पिछले समय में हुए संतों को मनुष्य-देह धारण करके संसार में आने की ज़रूरत ही न होती। जो संत आज इस दुनिया में नहीं हैं, अगर वे हमारे बीच मौजूद हुए बिना हमारी सहायता कर सकते, तो उन्हें उस वक़्त इस धरती पर आने की ज़रूरत ही क्या थी? यदि परमात्मा देहधारी सतगुरु के माध्यम के बिना, आत्माओं को अंतर में ऊँचे मंडलों में ले जाता, तो किसी भी आध्यात्मिक गुरु की इस संसार

में आने की ज़रूरत ही क्या थी? संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि यदि इतिहास में आध्यात्मिक गुरु की समय-समय पर मनुष्य-रूप में इस संसार में आने की ज़रूरत पड़ी है तो निश्चय ही आज भी उनकी उतनी ही ज़रूरत है। सच तो यह है कि आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलने के लिये देहधारी गुरु अनिवार्य है। ईसा मसीह ने भी अपने समय में कहा था, "जब तक मैं संसार में हूँ, मैं संसार का प्रकाश हूँ" (जॉन 9:5)। संसार के सभी देशों और हर समय के संत-महात्माओं ने आत्मिक सफ़र के लिये देहधारी गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता पर बल दिया है।

आध्यात्मिक गुरु का मार्ग

जब तक हम स्वयं अनुभव नहीं कर लेते, तब तक ऊँचे आध्यात्मिक मंडलों के बारे में हमारी धारणा केवल एक मन की उड़ान ही बनकर रह जाती है। ऐसी धारणा हमारी मनगढ़ंत कल्पना के सिवाय और कुछ नहीं है। एक सच्चा आध्यात्मिक गुरु केवल मानसिक धारणाओं, कल्पनाओं अथवा ग्रंथों के ज्ञान के आधार पर ही कार्य नहीं करता। गुरु तो अपने निजी अनुभव का वर्णन करता है। चूँकि संत-महात्मा परम आनंद की उच्चतम अवस्था को पाकर परमात्मा के साथ मिलकर एक हो चुके होते हैं, इसलिये वे जो भी बताते हैं वह उन्होंने स्वयं अनुभव किया होता है।

सच्चे संत-महात्मा हमारे धर्म बदलने का समर्थन कभी नहीं करते। वे हमें आपस में मिलाने के लिये आते हैं, न कि अलग करने के लिये। सूर्य की किरणें देखने में अलग-अलग प्रतीत होती हैं, लेकिन जब हम उनके स्रोत की ओर ऊपर देखते हैं, तो पता चलता है कि वास्तव में वे मूल रूप में एक ही हैं। परमात्मा को चाहे हम जेहोवा, यीशू, अल्लाह, कृष्ण, विश्वशक्ति अथवा किसी और नाम से पुकारें, लेकिन असल में हम सब उसी एक परमसत्य के साथ संपर्क स्थापित करना चाहते हैं। सच्ची आध्यात्मिकता का हमारे धार्मिक रीति-रिवाजों से कोई सरोकार नहीं है, इसका सरोकार तो उस प्रेम को जाग्रत करने से है जो हम सबके अंदर है, चाहे हम उसे कैसे भी प्रकट करें। हमारे अंतर में कोई सीमाएँ

नहीं हैं। हम सब अपनी प्राकृतिक विरासत को और अपने अंदर दबे उस ख़ज़ाने को फिर से खोजना चाहते हैं और यह खोज कैसे की जाए, इसी को सिखाने के लिये सच्चे आध्यात्मिक गुरु संसार में आते हैं। वे स्वयं अपने स्रोत परमधाम में लीन हो चुके होते हैं। संसार में रहते हुए भी संत अपनी मरज़ी से अपने शरीर से निकलकर उच्चतम रूहानी मंडलों की यात्रा करते हैं और अपनी मरज़ी से फिर वापस लौट आते हैं, ताकि वे अपने शिष्यों को जीते-जी मरने अर्थात् ऊँचे रूहानी मंडलों में पहुँचने की शिक्षा दे सकें।

सच्चे आध्यात्मिक गुरु इस संसार को बदलने के लिये नहीं आते। वे अपनी शिक्षा के द्वारा यह स्पष्ट करते हैं कि इस संसार को स्वर्ग बनाने के लिये नहीं रचा गया है। यदि संतों का यही उद्देश्य होता तो पहले आ चुके महान संत-महात्माओं ने अब तक इसे स्वर्ग बना दिया होता।

संतों का उद्देश्य तो यह सिखाना होता है कि किस प्रकार हम अपनी चेतना को एकाग्र करके, परमात्मा के दिव्य शब्द की मधुर धुन में लीन हो सकते हैं। एक बार जब हम आंतरिक धुन से संपर्क कर लेते हैं, तब मन इस धुन का साथ लेकर अपने स्रोत तक पहुँच जाता है और अपने खोए हुए घर को पा लेता है। आत्मा जो मन के साथ वीरानों में भटककर शक्तिहीन और असमर्थ हो गई थी, वह अपनी अलग पहचान खोज लेती है और मन पर जीत हासिल करके फिर अपने स्रोत में ही मिल जाती है।

सच्चे आध्यात्मिक गुरु की पहचान

सच्चा आध्यात्मिक गुरु अपने उपदेश का न तो कोई मूल्य लेता है और न ही उसके बदले में कोई दान स्वीकार करता है। क़ुदरत के दिये मुफ़्त उपहार, जैसे हवा, पानी, सूर्य के प्रकाश आदि के समान संतों के उपदेश भी मुफ़्त दिये जाते हैं। सच्चा आध्यात्मिक गुरु, न तो अपने लिये कुछ माँगता है और न ही किसी पर बोझ बनता है, बल्कि सदैव अपनी कमाई द्वारा अपना और अपने परिवार का पालन करता है। वर्तमान समय में ऐसा सच्चा आध्यात्मिक गुरु खोज पाना बहुत कठिन है जो केवल दूसरों

की सहायता करने में रुचि रखता हो, परंतु दूसरे के धन के प्रति उसकी कोई लालसा न हो। सच्चा आध्यात्मिक गुरु उन लोगों का विरोध कभी नहीं करता जो उसके विचारों से सहमत नहीं होते और न ही दूसरों के व्यवहार की शिकायत करता है। वह किसी की निंदा या आलोचना नहीं करता। एक सच्चा आध्यात्मिक गुरु विनम्र और विवेकशील होता है तथा अपनी शक्ति को गुप्त रखता है। वह जादूगरों की तरह लोगों को प्रसन्न करने के लिये चमत्कार नहीं करता। उसका मुख्य उद्देश्य अपने शिष्यों को प्रभुप्राप्ति के लिये शब्द के अभ्यास का उपदेश देना है तथा इस आध्यात्मिक कार्य को उन्नत करने के लिये दैनिक जीवन जीने की विधि बताना है।

सतगुरु से मिलाप का महत्त्व

केवल संत ही मृत्यु के भेद को पूरी तरह जानते हैं। मृत्यु के समय जब परिवार, धन-संपत्ति और शरीर सभी हमारा साथ छोड़ देते हैं, तब केवल सच्चे आध्यात्मिक गुरु ही अपने शिष्य के साथ रहते हैं। मृत्यु का द्वार पार करते समय वे पूर्ण संत-सतगुरु हमारे साथ होते हैं। उसके बाद आध्यात्मिक मंडलों में भी वे हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

जैसे-जैसे हम अध्यात्म को समझने में उन्नति करते हैं, वैसे वैसे यह बात भी अधिक स्पष्ट होती जाती है कि देहधारी आध्यात्मिक गुरु के बिना हम कुछ नहीं कर सकते। हमारे सतगुरु ही हमारे मित्र, मार्गदर्शक, हमारे आदर्श का जीता-जागता उदाहरण होते हैं। वही हमारी आध्यात्मिक उन्नति का आधार और सहारा होते हैं। जब हम देहधारी गुरु के उपदेश पर चलते हैं तो हमें अनगिनत लाभ प्राप्त होते हैं। वह हमें ऐसी योग्यता प्रदान करते हैं जिससे हम प्रेम, सद्भावना, करुणा, कार्य-कुशलता आदि के गुण ग्रहण करके एक बेहतर इनसान बनते हैं। अपने दैनिक दायित्वों को ज़्यादा अच्छी तरह निभानेवाला श्रेष्ठ मनुष्य बनने में वह हमारी सहायता करते हैं। वह हमारी चेतना को मन और माया के क्षेत्र से ऊपर ले जाने में हमारी सहायता करते हैं। उनके उपदेश पर चलकर जैसे ही

हम अपने अंतर में स्थित ईश्वरीय शक्ति से संपर्क स्थापित कर लेते हैं, हमारा कायाकल्प हो जाता है। यह उसी शक्ति का कमाल है जो हमें सब बंधनों से मुक्त करा देती है।

जिस प्रकार एक जौहरी हीरे के ख़ुरदरेपन को तराशकर उसे बहुमूल्य हीरे का रूप दे देता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्य को उसकी कमियों के प्रति सावधान करते हैं और साथ ही साथ उसमें निहित आध्यात्मिक शक्ति के प्रति उसे जागरूक कर देते हैं। जब हम किसी सच्चे देहधारी आध्यात्मिक गुरु के संपर्क में आते हैं, तो हमें अपनी अनमोल आध्यात्मिक शक्ति का पता चलता है और हम इसे पूरी तरह विकसित करना सीखने लगते हैं।

10

शाकाहार क्यों?

हर साल हज़ारों एकड़ भूमि पर आबाद घने हरे-भरे वनों को पशुओं की चरागाह बनाने के लिये जला दिया जाता है। पशुपालन के लिये चरागाहें बनाने के उद्देश्य से बड़े-बड़े, मज़बूत तथा सुंदर पेड़ों को काट दिया जाता है। यह काम इतने बड़े पैमाने पर किया जाता है कि अब तो यह पूरे विश्व की जलवायु को भी प्रभावित करने लगा है। इसके अतिरिक्त उन स्थानों पर जहाँ पानी की कमी है, पशु और मुर्गी पालन के लिये मांस-उद्योग द्वारा प्रतिदिन हज़ारों गैलन पानी प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार बाज़ार-मंडी की माँग को पूरा करने के लिये, दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ मछली-उद्योग आश्चर्यजनक रूप से समुद्रों के पर्यावरण को प्रभावित कर रहा है। हर साल 'ट्यूना' (tuna) मछली को पकड़ने के लिये बिछाए हुए जालों में हज़ारों डॉल्फ़िंज़ (एक प्रकार की मछली) मर जाती हैं। आज तक अनगिनत जलजीवों की जातियाँ लुप्त हो गई हैं और कई लुप्त होने के कगार पर हैं। पर्यावरण की दृष्टि से तथा सामाजिक तौर पर, हम इसकी बहुत बड़ी क़ीमत चुका रहे हैं। यह नैतिक रूप से ग़लत है, स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अनावश्यक और हानिकारक है। साथ ही साथ पशुओं, मछलियों, मुर्गियों तथा उनके अंडों से अपना भोजन जुटाना हमारे लिये बहुत ख़र्चीला भी है। हम अपनी प्रोटीन की आवश्यकता कम

ख़र्च में, अधिक सरलता से शाकाहारी खाद्य-पदार्थों से पूरी कर सकते हैं। ऐसे में पशुओं पर, जंगलों पर, अपने आप तथा धरती पर कोई बुरा असर भी नहीं पड़ेगा।

पशुओं के मांस में विद्यमान विषाणु तथा रोगों के कीटाणु मनुष्यों में बीमारियाँ फैलाते हैं। मांसाहारी-भोजन में यूरिक-एसिड की अधिक मात्रा मनुष्य के शरीर में ऐसा विष भर देती है जिसको निकाल पाना बहुत कठिन होता है और यही एसिड स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का कारण बनता है। यदि हम अपने शरीर का ध्यान से अध्ययन करें तो हम पाएँगे कि प्राकृतिक रूप से हमारे शरीर की संरचना मांस खाने के लिये नहीं है। हमारे दाँत तथा नाख़ून मांसभक्षी पशुओं के समान नहीं हैं, बल्कि मांसभक्षी पशुओं के विपरीत हमारी आँतें लंबी हैं। इस कारण मांसाहार द्वारा अंदर जमा हो जानेवाले विष को बाहर निकालने की हमारी प्रक्रिया बहुत धीमी है जो हमें संकट में डाल सकती है।

लाखों गायों, बकरियों, मछलियों, भेड़ों तथा मुर्गियों के भाग्य पर विचार करें जिनको हर साल हमारे खाने के लिये बेरहमी से मारा जाता है। हम बिना सोचे-विचारे निर्दयता से उनकी हत्या करते हैं या फिर अपने लिये दूसरों से करवाते हैं। कितने बेख़बर तथा बेपरवाह हैं हम उनके कष्ट के प्रति! क्या हमने कभी इन बातों पर गहराई से विचार किया है? अपनी जीभ के कुछ पल के स्वाद की ख़ातिर निरीह प्राणियों को इतना कष्ट देना तथा इसके साथ आर्थिक, पर्यावरण संबंधी और सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करना कितना विवेकहीन कर्म है! हम कभी यह बात समझने का यत्न नहीं करते कि जब हम अन्य प्राणियों के दु:ख तकलीफ़ों को अपनी ख़ुशी का आधार बनाते हैं, तो हम अपने लिये उस दु:खद कर्म के अनचाहे परिणामों को आमंत्रित करते हैं।

कोई व्यक्ति कई कारणों से शाकाहारी हो सकता है और वह कारण स्वास्थ्य संबंधी हो सकता है अथवा सामाजिक, मानवीय, धार्मिक या पर्यावरण संबंधी भी हो सकता है। परंतु संत हमें पूरी तरह से किसी भी प्रकार के मांसाहार से परहेज़ करने की जो शिक्षा देते हैं, उसका कारण

आध्यात्मिक है। यह उपदेश कर्मों के क़ानून अथवा नुकसान की भरपाई के नियम पर आधारित है। इसका सार बाइबल की इस उक्ति द्वारा बताया जा सकता है: "जैसा तुम बोओगे, वैसा ही काटोगे।" पिछले जन्मों में किये हुए विनाशकारी कर्मों का जो बोझ हम ढो रहे हैं, वह पहले से ही भारी है और हम इस बोझ तले दब गए हैं। अत: अनजाने में इकट्ठे किये इस बोझ में अब हमें और अधिक वृद्धि नहीं करनी चाहिये। यदि हम दु:ख और पीड़ा के बीज बोएँगे तो एक दिन हमें दु:ख और पीड़ा को ही भोगना पड़ेगा। यदि हम अपने भोजन की ख़ातिर स्वयं हत्या करते हैं अथवा दूसरों को धन देकर उनसे हत्या करवाते हैं, तो अपने द्वारा दिये गए इस दु:ख और पीड़ा के एक-एक अंश के लिये हम ज़िम्मेदार हैं। हम उसी अनुपात में अपने लिये दु:ख और पीड़ा को आमंत्रित कर रहे हैं, जिस अनुपात में हम दूसरों को पीड़ा पहुँचा रहे हैं। इसका अर्थ है कि हमें इस सृष्टि में फिर से जन्म लेना होगा तथा किसी न किसी दिन अपने किये हुए कर्मों का फल भोगना होगा। हर कर्म के समान अनुपात में भुगतान का यह नियम भौतिक विज्ञान में न्यूटन के नियम के समान सुनिश्चित, अनिवार्य तथा अपरिवर्तनशील है।

यदि हम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जीवहत्या के लिये ज़िम्मेदार हैं तो हमारे लिये चेतना के इस धरातल से ऊपर उठ पाना बहुत कठिन है। यह बहुत भारी क़र्ज़ है और इसे अवश्य चुकाना पड़ेगा। इसी लिये सच्चे आध्यात्मिक संत-सतगुरु हमें उपदेश देते हैं कि हमें अपने भोजन की ख़ातिर दूसरे प्राणियों का ख़ून बहाना तथा उन्हें पीड़ा पहुँचाना छोड़ देना चाहिये। वह चाहते हैं कि हम अपने कर्मों के बोझ को और अधिक न बढ़ाएँ जो पहले से ही भारी है।

एक सूई स्वाभाविक रूप से चुंबक की ओर खिंची चली जाती है, परंतु यदि हम सूई पर भारी बोझ रख दें, तो इसका चुंबक की ओर खिंचना संभव नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार यदि हम अपने ऊपर ऐसे कर्मों के भारी बोझ रखते जाएँगे जो हमें रचना के निम्न स्तर पर रोके रखेंगे, तो हमारे लिये आध्यात्मिक उन्नति करना असंभव हो जाएगा।

सादगीपूर्ण नैतिक जीवन

हम अपने जीवन में जिस प्रकार का आचरण रखते हैं, उसका सीधा प्रभाव हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के विकास पर पड़ता है। सभी आध्यात्मिक संत-सतगुरु हमें बताते हैं कि नैतिक आचरण ही आध्यात्मिक जीवन की नींव को मज़बूत करता है।

संतों के नैतिक उपदेश उनके इस ज्ञान पर आधारित होते हैं कि हमारी आध्यात्मिक उन्नति के लिये कौन-से कर्म सहायक हैं तथा कौन-से हानिकारक। संत नैतिकता की बात केवल नैतिकता के लिये ही नहीं करते, बल्कि उनका उद्देश्य कर्मफल के उस नियम को समझाना है जो पूरे विश्व पर लागू है। वे हमें भ्रमों तथा बंधनों से परे ले जाना चाहते हैं। वे जानते हैं कि सुख के प्रति हमारा मोह, हमें ख़ुशी की तलाश में ऐसे स्थानों पर ले जाता है जहाँ जाने पर हम केवल हताश, दुःखी तथा मोहग्रस्त हो जाते हैं। संतों द्वारा दिये गए नैतिक उपदेश का उद्देश्य हमें ऐसे कर्मफल के भयानक चक्रव्यूह में फँसने से बचाना है जो इस सृष्टि के साथ हमें बाँधे रखता है।

प्रश्न कामवृत्ति का

संत-महात्मा लोगों को कामवृत्ति पर नियंत्रण करने का उपदेश देते हैं, क्योंकि यह ध्यान को नीचे, शरीर की इंद्रियों की ओर खींचती है।

यदि हमें आध्यात्मिक उन्नति करनी है तो अपना ध्यान ऊपर की ओर ले जाना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये, ताकि हम अपनी चेतना के स्तर को उन्नत कर सकें। कोई भी चीज़ जो ध्यान को शारीरिक या इंद्रिय सुखों की ओर ले जाती है, वह व्यक्ति को संसार में नीचे की ओर खींचती है और उसे इस भौतिक जगत के साथ अधिक मज़बूती से बाँध देती है।

स्टेनले व्हाइट (Stanley White) ने अपनी पुस्तक लिबरेशन ऑफ़ द सोल *(Liberation of the Soul)* में उन नैतिक समस्याओं पर चर्चा की है जिनका आध्यात्मिक मार्ग पर चलनेवाले जिज्ञासु को सामना करना पड़ता है। वह कहते हैं कि बहुत-से आध्यात्मिक संत-सतगुरु स्वयं गृहस्थ होते हैं। स्टेनले कहते हैं: "वे स्वयं उदाहरण बनकर दिखाते हैं कि मनुष्य एक गृहस्थ के रूप में जीवन बिताते हुए भी आध्यात्मिक मार्ग पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकता है। यदि हम विवेकशील तथा नियमित जीवन जिएँ तो हम महसूस करेंगे कि आध्यात्मिक अभ्यास धीरे-धीरे हमें शारीरिक आवश्यकताओं की ओर से उदासीन कर रहा है। तब हम काम की प्रवृत्ति को भूल जाते हैं, क्योंकि हम इस अभ्यास में इतना आनंदविभोर हो जाते हैं कि ख़ुशी से कामवृत्ति से संबंधित क्षणिक सुखभोग को त्याग देते हैं। संत-महात्मा बहुत व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते हैं। वे जानते हैं कि आध्यात्मिक मार्ग पर आते ही हम इंद्रियों के विषय-भोगों से एक दम मुँह नहीं मोड़ सकते। वे उपदेश देते हैं कि निर्लिप्त होने की यह अवस्था धीरे-धीरे आती है। वे हमें उस समय तक शारीरिक आवश्यकताओं को संयम में रहकर पूरा करने की आज्ञा देते हैं जब तक हम उस शब्द-धुन के साथ जुड़ने की अवस्था तक नहीं पहुँच जाते, फिर यह आवश्यकता हमारे लिये महत्त्वहीन हो जाती है।

"जैसे-जैसे हम भीतर आध्यात्मिक उन्नति करते हैं, वैसे-वैसे व्यावहारिक रूप से कामवृत्ति में हमारी रुचि तथा इसे संतुष्ट करने की आवश्यकता कम होती जाती है। कुछ गिने-चुने व्यक्तियों को छोड़कर जिन्होंने वास्तव में इस प्रवृत्ति पर विजय पा ली है, अन्य सबके लिये ब्रह्मचर्य जीवन अव्यावहारिक है। इसी प्रकार ज़बरदस्ती जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन करने से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में इंद्रियों के दमन के

कारण मन विद्रोह करता रहेगा। अत: यह स्पष्ट है कि संतों द्वारा बताए तरीक़े के अनुसार अपने को भीतर शब्द-धुन के साथ जोड़कर, धीरे-धीरे विरक्त होने के उद्देश्य को सामने रखकर, निर्मल नैतिक गृहस्थ जीवन जीना ही एकमात्र उपयुक्त विधि है जिसके द्वारा शारीरिक आवश्यकताओं पर विजय पाई जा सकती है।"

यह मन ही है जो हमें आत्मिक अनुभूति प्राप्त करने से रोकता है। इसलिये बहुत-से लोग जो अपनी आध्यात्मिक सूझबूझ विकसित करना चाहते हैं, वे किसी न किसी तरह अपने मन को वश में करने की कोशिश करते हैं। कई लोग अनेक तरह से तप करते हैं अथवा जीवन में अनेक संयम अपनाते हैं। वे आशा करते हैं कि ऐसा करके वे दुनियावी विषय-भोगों से ज़बरदस्ती मन को विरक्त कर सकते हैं। परंतु यदि हम मन को आनंद प्राप्त करने का कोई विकल्प नहीं देते, अगर हम मन को और अधिक ख़ुशी देनेवाले परम आनंद के स्रोत के साथ जोड़ने में सफल नहीं होते, तो वह किसी न किसी दिन प्रतिक्रिया अवश्य करेगा। एक साधु वर्षों की साधना के पश्चात आत्मसंयम प्राप्त करके जब इस संसार में वापस लौट आता है तो सांसारिक प्रलोभनों का सामना होने पर वह उनके वशीभूत हो जाता है। तब यह भी हो सकता है कि वह एक साधारण व्यक्ति के समान भी आत्मसंयम न रख सके। जब मन को ज़ोर-ज़बरदस्ती से बाँधकर वश में लाया जाता है तो फिर से मुक्त होने पर यह प्राय: दुगुने बल से शारीरिक भोगों की ओर वापस लौट आता है।

इंद्रियों को ज़बरदस्ती क़ाबू करने से इन भोगों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता और न ही, जैसा कुछ लोग सोचते हैं कि इन विषय भोगों में बहुत अधिक लिप्त रहकर उन्हें संतुष्ट करके ही उनसे ऊपर उठा जा सकता है। ऐसा करना ठीक वैसे ही है जैसे पैट्रोल फेंककर आग बुझाने का प्रयास करना! इससे तो मन भोगों में और अधिक सक्रिय हो जाएगा। अधिक भोग-विलास से यह कभी संतुष्ट नहीं होगा। इसके विपरीत अतिभोग से इसकी इच्छाएँ और बढ़ेंगी। संत एक अलग तरह का दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव देते हैं। वे हमें मन को किसी उत्तम

वस्तु के साथ जोड़ने की शिक्षा देते हैं; जो इंद्रिय सुखों से कहीं अधिक आनंददायक हो। यह परम आनंद हमें शब्द के साथ जुड़कर ही मिल सकता है। शब्द निर्मल तथा सदा रहनेवाले आनंद का मूलभूत स्रोत है। इस अखंड संगीत के साथ जुड़कर जो रस मिलता है, उस अलौकिक आनंद से मनुष्य अपनी सुधबुध ही भूल जाता है तथा इसे सुनने से वह कभी नहीं थकता। इस आनंद की तुलना में सांसारिक सुख मनुष्य को नीरस तथा अरुचिकर लगने लगते हैं। केवल इसी साधन द्वारा मनुष्य विषय-भोगों की तरफ़ से वास्तव में अनासक्त हो सकता है।

यह विरक्ति शून्य में प्राप्त नहीं हो सकती। केवल किसी उत्तम वस्तु के साथ हमारा लगाव अर्थात् शब्द के साथ लगाव ही हमें सही अर्थों में इस जगत से विरक्त कर सकता है।

संतोष – परम धन

संत हमें शिक्षा देते हैं कि हमें दूसरों के साथ अपने व्यवहार में ईमानदार होना चाहिये तथा नैतिकता हमारे जीवन का अभिन्न अंग होनी चाहिये। वे इस बात को बहुत महत्त्व देते हैं कि प्रत्येक इनसान को अपनी जीविका स्वयं कमानी चाहिये, क्योंकि यदि हम दूसरों की कमाई पर निर्भर रहते हैं तो हम अपनी आध्यात्मिक प्रगति तथा विकास में एक और बाधा खड़ी कर लेते हैं। दूसरों पर बोझ बनकर हम अपने ऊपर ऐसे क़र्ज़ चढ़ा लेते हैं कि हमें इस शरीर में फिर आना पड़ता है ताकि वे क़र्ज़ चुकाए जा सकें।

सच्चे आध्यात्मिक संत-सतगुरु ईमानदारी से जीविका कमाकर हमारे सामने उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस प्रक्रिया में मार्ग से भटके बिना वह जीवन निर्वाह करते हैं। अपने निजी प्रयोग के लिये वह अपने शिष्यों से धन कभी नहीं स्वीकार करते। वह दूसरों के साथ अपने व्यवहार में निष्कपट तथा निष्पक्ष होते हैं। वह हर पल यही दर्शाते हैं कि ख़ुशी धन-संपत्ति से नहीं, बल्कि मन के संतोष से मिलती है।

इस भौतिक युग में हमारे मन में यह विचार किसी तरह घर कर गया है कि अधिक ख़ुश रहने के लिये हर चीज़ हमें अपनी रोज़मर्रा की

ज़रूरत से बहुत ज़्यादा चाहिये। हम इस बात को समझते ही नहीं कि जब भौतिक सुख-सुविधा तथा सुरक्षा हमारे लिये महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, तो हमारी अंतर्मुखी प्रवृत्ति कम होने लगती है। अपने आप को धन-संपत्ति तथा दुनियावी पदार्थों से जोड़कर हम अपना अहंकार और बढ़ा लेते हैं, अपनी अंतर्मुखता अथवा संतुलन को दुर्बल कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में हम अपने आप को अपनी असलियत से अलग कर लेते हैं और धन-संपत्ति तथा कामनाओं से बँधकर व्याकुल और तनावग्रस्त हो जाते हैं।

हम अपनी नश्वरता के कटु सत्य को सदैव अनदेखा करने की कोशिश करते हैं। हमारा मन कभी अपने आप को व्यस्त रखकर, कभी अधिक धन इकट्ठा करने का प्रयास करता है, कभी अधिक सत्ता अथवा अपनी पसंद की अन्य वस्तुएँ जुटाने में लगे रहकर ख़ुद को धोखा देता है। इस परिस्थिति में हम सभी पर दुनियावी धंधे करने का जुनून इस हद तक सवार रहता है कि हमें अपने अंत समय को याद रखने तक की फ़ुरसत नहीं मिलती। सच तो यह है कि हमारी स्थिति उस शुतुरमुर्ग़ के समान है जो अपना सिर ज़मीन में छिपाकर सोचता है कि उसे कोई नहीं देख सकता। एक न एक दिन हमारा अंत होगा ही, चाहे हम कहीं भी छिप जाएँ या किसी भी कार्य में व्यस्त हों।

अपने अंतर में सुख खोजने के बजाय बाहरी जगत में सुख खोजने की कोशिशों में हमने अपनी उलझनें इस हद तक बढ़ा ली हैं कि लौटना संभव नहीं है। हमने विक्रेता-प्रचार-माध्यमों (marketing media) को अपने विचारों पर हावी करके, अपने लिये बनावटी आवश्यकताएँ उत्पन्न कर ली हैं। इस प्रक्रिया में हमने टी. वी. विज्ञापनों द्वारा दिये जानेवाले अपार आनंद के आश्वासनों के अनुरूप अपने आप को ढाल लिया है और उनके लुभावने जाल में सिर से पाँव तक फँस गए हैं।

विक्रेता-जनसंचार-माध्यमों (mass marketing media) ने मनुष्य को लोभ-लालच के अधीन कर दिया है जिसने हमारे आध्यात्मिक मूल्यों को भौतिक आदर्श में बदल दिया है। उपभोक्तावाद ही हमारी जीवन शैली को संचालित कर रहा है। ख़रीदारी के लिये बाज़ारों में जाना, धार्मिक भावना

का विकल्प बन गया है और 'मॉल' तथा ख़रीदारी-भवन (shopping complex) ही अब पूजा-अर्चना के स्थान बन गए हैं। हम अपने पड़ोसियों से पीछे नहीं रहना चाहते और वह सब प्राप्त करना चाहते हैं जिसकी जानकारी प्रचार माध्यम देते हैं। दस क्रेडिट कार्ड भी हमारे लिये पर्याप्त नहीं हैं। यदि हमारे पास सर्दियों के लिये अलग और गर्मियों के लिये अलग घर है, इसके साथ समुद्र के किनारे एक फ़्लैट है और हरे-भरे वन में भी एक कुटीर है, फिर भी हम संतुष्ट नहीं हैं।

एक दिन में हम कितनी कमीज़ें पहन सकते हैं? एक शाम को हम कितनी पोशाकों का प्रदर्शन कर सकते हैं? रात को हम कितने कमरों में सो सकते हैं? यदि हम उन भौतिक पदार्थों को पाने में सफल हो भी जाएँ जो सामाजिक प्रतिष्ठा की पहचान हैं – जैसे विशेष ग्राहक के लिये बनी रोल्स रॉयस कार अथवा एक निजी छोटा हवाई जहाज़, इसके बावजूद भी यदि हम सुख का अनुभव नहीं करते तो इन सब साधनों का क्या फ़ायदा? क्या हमारी हालत उस कुत्ते के समान नहीं है जो बिना सोचे-समझे एक कार के पीछे तब तक भागता है जब तक वह उसके पास नहीं पहुँच जाता, परंतु कार के पास पहुँचने के बाद उसे समझ ही नहीं आता कि अब उसे क्या करना है?

लोभ विनाशकारी होता है। यह मनुष्य को अंधा बना देता है। यह लोभ लोगों में अपनी मनचाही वस्तुएँ पाने की चाहत को इतना प्रबल कर देता है कि वे अपनी आत्मा तक को कौड़ियों के भाव बेचने को तैयार हो जाते हैं। बिना सोच-विचार किये अपनी बेतुकी माँगों को पूरा करने के लिये लोग अकसर बेरहम हो जाते हैं। ज़रा सोचें कि अपने लोभ को संतुष्ट करने के लिये हमने पृथ्वी की संपदा का किस प्रकार शोषण किया है! अपनी सुविधा के अनुसार हम उन सिद्धांतों के साथ भी समझौता कर लेते हैं जिनको हम अपने लिये बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं। जिन कार्यों के लिये हम दूसरों की निंदा करते हैं, उन्हीं कार्यों को आवश्यकता पड़ने पर अपने लिये उचित ठहराते हैं।

लोभ की प्रवृत्ति से तथा निरंतर अपनी स्वार्थपूर्ति में ही लगे रहने से मनुष्य का हृदय कठोर हो जाता है, मन इधर-उधर भागता है तथा अनमोल शक्तियाँ व्यर्थ चली जाती हैं जिससे आध्यात्मिक प्रगति करना बहुत कठिन हो जाता है।

सही अर्थों में वही व्यक्ति धनवान है जिसके पास अधिक धन तो नहीं है, परंतु जो कुछ उसके पास होता है उसी में संतुष्ट है। हमने अपने जीवन का स्तर तो ऊँचा कर लिया है, परंतु निराशाजनक बात यह है कि हमारी संतोष की भावना ही समाप्त हो गई है। आज की शब्दावली में संतोष हमारे लिये एक अनजाना शब्द बनकर रह गया है, जब कि हमारे पास सब कुछ हमारी आवश्यकता से कहीं अधिक है।

यदि हम इसके बारे में सोचने की कोशिश करें तो हम समझ जाएँगे कि हमें इतना कुछ नहीं चाहिये। हमारी आवश्यकताएँ इतनी अधिक नहीं हैं। जीवन बहुत सादा है। हमने ख़ुद ही इसे उलझा लिया है। जितनी अधिक वस्तुओं को हम अपने पास रखते हैं, उतने ही अधिक हम उनके अधीन हो जाते हैं। इसके विपरीत जितनी कम वस्तुओं को हम अपने पास रखते हैं, उतनी ही हमारी अधीनता कम हो जाती है।

अनमोल ख़ज़ाना पुस्तक में दर्ज एक सत्संग में महाराज चरन सिंह जी हमें बताते हैं, "किसी से भी पूछकर देख लो, किसी को भी फ़ुरसत नहीं है; मज़दूर को फ़ुरसत नहीं है; इंजीनियर को फ़ुरसत नहीं है; डॉक्टर को फ़ुरसत नहीं है; उद्योगपति को फ़ुरसत नहीं है। किसके पास आराम करने का समय है? किसके पास विश्राम के कुछ पल हैं? किसी के पास नहीं।

"तो फिर इस सारी उन्नति और इस सारे विकास से हमने क्या पाया? हमें अपने लिये एक घंटे, आध घंटे तक का भी समय नहीं मिलता जिसमें हम तनावरहित होकर सुख-चैन से बैठ सकें। हर व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रस्त है – सबके चेहरों पर तनाव दिखाई देता है। लोग एक साथ मिल-बैठकर अपना तनाव दूर करने तथा उसे कम करने के लिये थोड़ी देर हँस-बोल भी नहीं सकते।

"इन सबका परिणाम है बढ़ते हुए हृदय रोग, डायबिटीज़ (मधुमेह) और उच्च रक्तचाप। हमारी पूरी ज़िंदगी बनावटी हो गई है। हम हँसना भूल गए हैं, आँसू बहाना भूल गए हैं। हमारी मुस्कराहटें और हमारे आँसू बनावटी हो गए हैं।

"इसमें सारा क़सूर विकास का नहीं है। विकास और तरक़्क़ी ने हमें जो कुछ दिया है, हम उसके क़ैदी बन गए हैं। असल में ये चीज़ें हमारे फ़ायदे के लिये, हमारे इस्तेमाल के लिये बनी थीं। हम इन वस्तुओं के लिये नहीं बने थे। लेकिन हम मशीनों के ग़ुलाम होकर रह गए हैं, इनके मालिक नहीं। हम इनके कब्ज़े में हैं, न कि हमने इन्हें कब्ज़े में किया हुआ है। इस सारी तरक़्क़ी की बागडोर हमारे हाथ में होनी चाहिये। हर व्यक्ति को पर्याप्त खाना मिलना चाहिये, सिर पर छत होनी चाहिये और जीवन शांतिपूर्ण होना चाहिये। किसी के भी मन में तनाव नहीं होना चाहिये।

"माता-पिता को बच्चों के प्रति प्यार होना चाहिये और बच्चों को अपने माता-पिता का आदर सम्मान करना चाहिये। यही वे मूल्य हैं जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति जीवन में संजोकर रखना चाहता है। यही जीवन के आधारभूत मूल्य हैं। अगर जीवन में मूल्य ही नहीं रहे तो इस सारे विकास का हमें क्या लाभ? इस सारी तरक़्क़ी से क्या फ़ायदा है?

"मैं आधुनिक विकास और वर्तमान सभ्यता के खिलाफ़ नहीं हूँ। लेकिन हमें किसी भी क़ीमत पर मनुष्य-जीवन के आधारभूत मूल्यों के साथ समझौता नहीं करना चाहिये। हमारे पास फ़ुरसत के पल भी होने चाहियें। हमें एक सादा, सरल और तनावरहित जीवन जीना चाहिये। परिवार में एकता और शांति का भाव होना चाहिये। अपने बड़ों के लिये आदर का भाव होना चाहिये और हमें बच्चों की उचित देखभाल करनी चाहिये। हमारा भोजन और वातावरण स्वास्थ्य के अनुरूप होना चाहिये। हमें दूसरों के प्रति हमदर्द और सहायक होना चाहिये। हमारे विकास की यही दिशा होनी चाहिये।"

यदि हम अपनी दुनिया संचार माध्यमों द्वारा बताए गए झूठे वादों पर बसाएँगे तो हम इन संचार माध्यमों के खोखलेपन और बनावटीपन में बह जाएँगे जिनका आधार केवल लोभ है और कुछ भी नहीं। अपने आप को पूरी तरह से विकसित करने का यह अवसर गँवाकर हम मन की स्थायी शांति और भीतर की अनोखी ख़ुशी तथा आनंद प्राप्त करने का अवसर भी खो देंगे।

12

भ्रामक दृष्टिकोण

नशाख़ोरी: अनुभूति के भ्रमपूर्ण द्वार

आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य भ्रमों से मुक्ति पाना है। यदि हम मन की अवस्था बदलने के लिये नशीली चीज़ों का सेवन करते हैं, चाहे वे रासायनिक हों या प्राकृतिक, तो हमारा मन कुछ अनोखी स्थितियों का अनुभव करने लगता है। ये अनुभव स्थायी नहीं होते और मन के दायरे तक ही सीमित रहते हैं। यदि हम एक नशीली गोली लेकर सदा के लिये अपनी आध्यात्मिक जागरूकता बढ़ा सकते तो इससे सरल उपाय और क्या हो सकता है? परंतु दुर्भाग्यवश ऐसा संभव नहीं है। जैसे ही नशीले पदार्थों का प्रभाव ख़त्म होता है, मनुष्य फिर से अपनी पहले जैसी अवस्था में आ जाता है। नशीली वस्तुओं के सेवन से प्राप्त हुए अनुभव, केवल मानसिक स्थितियाँ हैं जिनका आध्यात्मिक अनुभव से कोई सरोकार नहीं है। यही कारण है कि जो लोग नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं, उनके अनुभव एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

इसके विपरीत, एक व्यक्ति के आध्यात्मिक अनुभव दूसरे से अलग नहीं होते। सभी आध्यात्मिक अनुभव निश्चित रूप से एक समान होते हैं,

क्योंकि यह एक ऐसी आंतरिक यात्रा द्वारा प्रकट होते हैं जिसके नज़ारे सबको एक समान दिखाई देते हैं। यह किसी की मनगढ़ंत कल्पना नहीं, बल्कि ठोस सत्य है।

नशीले पदार्थ व्यक्ति को शारीरिक स्तर पर थोड़ी सी एकाग्रता दे सकते हैं और उसे सम्मोहन (hypnotic) निद्रा या मिथ्या आनंद की अवस्था में ले जा सकते हैं, परंतु नशे का प्रभाव समाप्त होने पर यह अनुभव भी जाता रहता है। यदि नशीले पदार्थों के सेवन से बदली हुई मानसिक स्थिति में हमें कुछ दिखाई देता भी है तो उस अनुभूति पर हमारा पूरा नियंत्रण नहीं होता, जब कि आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा हम अपनी चेतना के स्तर में परिवर्तन लाकर अपनी इच्छानुसार आध्यात्मिक मंडलों की यात्रा कर सकते हैं और इसी प्रकार अपनी इच्छानुसार चेतना को स्थूल शरीर में वापस ला सकते हैं।

आध्यात्मिक अनुभव हमारी आत्मा का विकास करते हैं और हमें एक संवेदनशील और बेहतर इनसान बनाते हैं। तब हम अपनी इंद्रियों के शिकार नहीं होते, हम अपने मन को वश में कर लेते हैं और मन इंद्रियों को वश में करना आरंभ कर देता है। लेकिन नशीले पदार्थों का सेवन करने से हम मन और इंद्रियों के ही ग़ुलाम बने रहते हैं और उन भ्रमों से ऊपर उठने में हम अपनी कोई सहायता नहीं कर पाते जिनमें हम पहले से ही उलझे हुए हैं, बल्कि और नए-नए भ्रमों में फँस जाते हैं।

शराब: बोतल में विनाश का संदेश

शराब के सेवन से परहेज़ करने के समर्थन में किसी विशेष तर्क की ज़रूरत नहीं है। हम जानते हैं कि शराब के नशे में हम अपने आप को मज़ाक का पात्र बना लेते हैं और नशे के प्रभाव में हम क्या-क्या मूर्खताएँ और अपराध नहीं कर बैठते! शराब का प्रयोग हमारी बुद्धि को इतना धुँधला और हमारी सोच-समझ को इतना भ्रष्ट कर देता है कि हमारा विवेक ही मारा जाता है और हम यह नहीं समझ पाते कि कौन-से काम

हमें या दूसरों को हानि पहुँचा सकते हैं। यहाँ तक कि शराब की सीमित मात्रा भी हमारे स्पष्ट सोचने की शक्ति को धुँधला कर सकती है। सत्य के खोजी का मूल उद्देश्य चेतना के स्तर को बढ़ाना है, न कि कम करना।

रूहानी नज़रिये से हमें हर उस आदत से दूर रहना चाहिये जिसका हम पर बुरा असर पड़ता है। अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल ठीक तरह से करना हमारा फ़र्ज़ है। धूम्रपान और तंबाकू से बने पदार्थ लेने की आदत आसानी से बन जाती है जो हमारे मन पर गहरा असर डालती है। इसकी वजह से मन और शरीर में ऐसी ज़बरदस्त तलब उठती है जो हमारे मनोबल को कमज़ोर कर देती है। परमार्थ के मार्ग पर चलने, ज़िंदगी का सामना करने और अपने उसूलों पर क़ायम रहने के लिये हमें दृढ़ इच्छाशक्ति की ज़रूरत है। धूम्रपान हमें शारीरिक और मानसिक तौर से कमज़ोर बना देता है और इसका हानिकारक असर हमारी रूहानी तरक़्क़ी पर पड़ता है।

> धूम्रपान एक ख़तरनाक आदत है, यह धीमी गति का ज़हर है जो कई गंभीर रोगों को जन्म देता है। इसलिये बेहतर है कि हम ऐसी आदतों से दूर रहें। हम ज़ोर देकर यह सुझाव देते हैं कि जो भी आदत हमें अपने वश में कर लेती है और हमारी सेहत के लिये हानिकारक है, उससे हमें सख़्त परहेज़ करना चाहिये।
>
> जी. एस. ढिल्लों

एकाग्रता आध्यात्मिक अभ्यास का एक अभिन्न अंग है। एकाग्रता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि हम अपने प्रति पूरी तरह सचेत और सतर्क हों। यदि हम नशीले पदार्थों या शराब के प्रभाव के अधीन होंगे, तो ऐसा हो सकता है कि हमें थोड़ी देर के लिये सुखद अनुभव हो और हमें मस्ती के सागर में डूबे होने का एहसास हो, परंतु शराब या नशीले पदार्थों के नशे में वास्तविक आध्यात्मिक अभ्यास कर पाना असंभव है।

13

आंतरिक अभ्यास

वास्तविक आध्यात्मिक विकास केवल अभ्यास द्वारा संभव होता है। अभ्यास के बहुत साधन हैं और प्रत्येक के परिणाम और उद्देश्य भिन्न हैं। यहाँ जिस अभ्यास का वर्णन किया गया है वह आत्मा की आदिशक्ति, यानी शब्द से जुड़ने का साधन है। यह केवल हमें सीधे-सीधे अपने स्रोत में मिलाने से संबंध रखता है।

शब्द हमारे अंदर प्रकाश और ध्वनि के रूप में मौजूद है। इसको प्रकट करके इससे संबंध जोड़ने के लिये हमें किसी ऐसे गुरु के बताए साधन को अपनाना होगा जो स्वयं इससे जुड़ा हो। यदि हमारे पास एक ऐसा रेडियो है जिसका बिजली से संपर्क नहीं है, तो स्पष्ट है कि हम उससे संगीत नहीं सुन सकते। किसी प्रसारण की तरंगों को पकड़ने के लिये हमें पहले बिजली के स्रोत से इसे जोड़ना होगा। ठीक इसी प्रकार पूर्ण देहधारी आध्यात्मिक गुरु जो स्वयं ब्रह्मांड की रचना करनेवाली शक्ति के स्रोत के साथ जुड़े होते हैं, वह हमें अंतर में गूँज रही दिव्य ध्वनि के साथ जुड़ने की विधि सिखा सकते हैं।

आंतरिक यात्रा

जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा का पहला पड़ाव जिससे हम गुज़र रहे हैं यह भौतिक संसार है जिसमें हम इंद्रियों द्वारा इस संसार से संपर्क स्थापित करते हैं। हालाँकि यहाँ हमें कुछ सुख के क्षण भी अनुभव हो सकते हैं, यहाँ निराशा और कष्ट बहुत हैं। यहाँ के सुख समय पाकर दुःख और निराशा में बदल जाते हैं। इंद्रियों की सीमा में बँधे होने के कारण हम सांसारिक मोह के बंधनों में जकड़े हुए संसार के सीमित दायरे तक रह जाते हैं और बाक़ी सब चीज़ों से बेख़बर इसी के बंदी बने रहते हैं। हमें यात्रा के दूसरे पड़ाव अर्थात् उस आंतरिक यात्रा का अनुमान ही नहीं हो पाता।

स्थायी सुख तो यात्रा के दूसरे पड़ाव को आरंभ करने से ही प्राप्त होता है। हम इस पड़ाव तक आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा ही पहुँच सकते हैं। ऐसा तभी संभव है जब हम अपने ध्यान को शरीर से समेटकर दोनों भौंहों के बीच, थोड़ा ऊपर तीसरे तिल पर टिकाते हैं। यह तिल मन और आत्मा की स्वाभाविक बैठक है। यह एक सूक्ष्म आध्यात्मिक बिंदु है जो शरीर को चीरने या काटने से दिखाई नहीं देता। यही वह सूक्ष्म बिंदु है जहाँ मन और आत्मा की गाँठ बँधी हुई है और जो जाग्रत अवस्था में हमारे ध्यान टिकाने का केंद्र है। यदि हम अपनी चेतना को इस स्तर पर ले आएँ तो यही वह जगह है जहाँ हम शब्द को यानी ईश्वरीय मनमोहक दिव्य धुन को सुन सकते हैं।

जब हम अभ्यास द्वारा इस दिव्य ध्वनि की मिठास का स्वाद लेते हैं तो हमारा मन जो निरंतर इंद्रियों के सुखों के पीछे भागता फिरता था, वह पूरी तरह ठहर जाता है। संसार के रस बिल्कुल फीके पड़ जाते हैं। यदि हम शब्द से जुड़ने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर अपने जीवन को ढालेंगे तो हमारा जीवन सार्थक, भावपूर्ण और जीने लायक़ बन जाएगा।

जीते-जी मरना

यह सच है कि शब्द का ख़ज़ाना हमारे अंदर है। यही हमारी पूँजी है। यह हमारे लिये ही रखी गई है। परंतु हम इसे तभी खोज पाएँगे जब हम एक देहधारी पूर्ण गुरु द्वारा बताई युक्ति से अभ्यास करेंगे।

देहधारी गुरु ऐसी युक्ति सिखा सकते हैं जिससे हम शरीर में से चेतन धाराओं को समेटकर, उन्हें तीसरे तिल पर केंद्रित करते हैं जहाँ शब्द की धुन सुनाई देती है। इस अभ्यास को संतों ने 'जीते-जी मरना' कहा है।

जैसा कि पहले बताया गया है, जब मौत आती है तब शरीर से हमारी आत्मा का सिमटाव होता है जो पैरों के तलवों से आरंभ होकर तीसरी आँख पर समाप्त होता है। इसमें पहले पैर ठंडे हो जाते हैं, फिर टाँगें और फिर पूरा शरीर सुन्न हो जाता है और शरीर के सभी अंग काम करना बंद कर देते हैं। जब आत्मा आँखों के केंद्र से बाहर निकल जाती है, तो शरीर उसके सहारे के बिना क़ायम नहीं रह सकता और हमारी मृत्यु हो जाती है।

अभ्यास के समय भी हम इसी विधि से जीते-जी मरते हैं। संतों की शिक्षा के अनुसार, अभ्यास के दौरान हमारी चेतना शरीर के निचले हिस्से से सिमटकर, तीसरी आँख में केंद्रित होती है। फिर हम इस भौतिक जगत की सीमाओं को लाँघ सकते हैं और तब आत्मा अपने सच्चे घर की यात्रा आरंभ करती है।

साधारण मृत्यु और जीते-जी मरने में महत्त्वपूर्ण अंतर यही है कि अभ्यास के समय आत्मा का शरीर से संपर्क नहीं टूटता। शरीर के अंग काम करना बंद नहीं करते और आत्मा अभ्यास के बाद वापस शरीर में लौट आती है।

जब तक ध्यान आँखों के नीचे फैला हुआ है, हम उस वास्तविक अमर जीवन की ओर से मरे हुए हैं, लेकिन जब ध्यान को शरीर से निकालकर तीसरे तिल में केंद्रित किया जाता है तब हम वास्तव में जी उठते हैं और संसार की ओर से मर जाते हैं।

मृत्यु पर विजय

संतों की शिक्षा का एक लाभ यह है कि जिज्ञासु मृत्यु के द्वार को चेतन अवस्था में ख़ुशी-ख़ुशी पार करता है। यह अनुभव उन जिज्ञासुओं का है जिन्होंने एक पूर्ण संत के निर्देशों का पालन किया है। यह केवल कहने की बात नहीं और न ही किसी धर्मग्रंथ से ली गई कोई कथा है।

जो अभ्यासी गंभीरता से पूर्ण संत की शिक्षा पर अमल करते हैं, वे प्रतिदिन जीते-जी मरने की अवस्था में पहुँच सकते हैं। जब एक बार वे इस ऊँची अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, तब वे ऊपर के आध्यात्मिक मंडलों में जाकर जब चाहे इसी भौतिक शरीर में वापस लौट सकते हैं। उनके लिये परमात्मा जीती-जागती सच्चाई है। वे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

साधक के लिये जीते-जी मरना आध्यात्मिकता का मुख्य पहलू है, क्योंकि ऐसी मौत के बाद ही आत्मा वास्तव में जी उठती है। जीते-जी मरने का आत्महत्या, जलाए जाने या दफ़नाए जाने से कोई वास्ता नहीं। यदि हम यह तकनीक सीख लें तो हम सदा के लिये जन्म-मरण के चक्र को ख़त्म कर सकते हैं और अमर हो सकते हैं। मृत्यु का द्वार पार करने की योग्यता पा लेने पर शिष्य का मौत का डर ख़त्म हो जाता है।

हम वास्तविक जीवन का अनुभव तब तक नहीं कर सकते, जब तक हम मृत्यु-मंडल को पार नहीं कर लेते या दूसरे शब्दों में जब तक ऊपर के सूक्ष्म मंडलों में प्रवेश करके हमारा नया जीवन शुरू नहीं होता। इसी लिये ईसा कहते हैं: "जब तक मनुष्य दोबारा जन्म नहीं लेता, तब तक वह परमात्मा के साम्राज्य को नहीं देख सकता" (जॉन 3:3)। यदि हम इस तकनीक में निपुण हो जाएँ तो हमें दोबारा इस संसार के दुःख झेलने कभी नहीं आना पड़ेगा।

तत्काल परिणाम

जीते-जी मरने की अवस्था आसानी से प्राप्त नहीं होती। केवल वे लोग ऐसा कर सकते हैं जिन्होंने मन को वश में कर लिया है, सभी इच्छाओं और कामनाओं को ख़त्म कर लिया है और अहंकार को नष्ट कर लिया है। यह इतना सरल नहीं जितना इसके बारे में पढ़ना या चर्चा करना सरल है। व्यक्ति संसार से विरक्त होकर ही यह अवस्था प्राप्त कर सकता है। जब तक इच्छाएँ हम पर हावी हैं, तब तक आत्मा शरीर के दायरे से ऊपर उठ ही नहीं सकती। केवल अपने आप को शरीर और मन से अलग करके ही व्यक्ति जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त कर सकता है।

कुछ लोग ग़लतफ़हमी का शिकार होकर यह मान बैठते हैं कि पलक झपकते ही ख़ुद को परमात्मा में लीन किया जा सकता है, किंतु आध्यात्मिकता में एक निश्चित विधि के अलावा, झटपट नतीजा देनेवाला कोई अन्य सरल उपाय नहीं है। असली रसायन वह आध्यात्मिक अभ्यास है जो नश्वर जीवनरूपी तुच्छ धातु को अमर जीवनरूपी सोने में बदल देता है और ऐसा करने में समय और मेहनत लगती है। इसलिये किसी भी प्रकार के भ्रम में न रहें! यह अवस्था रातों-रात प्राप्त नहीं हो जाती। यह केवल जानकारी प्राप्त करने का नहीं, बल्कि कायाकल्प करने का एक सहज तरीक़ा है जो लगातार अभ्यास करने से धीरे-धीरे पूरा होता है।

जब हम कोई कार्य आरंभ करते हैं तो तुरंत ही परिणामों के लिये उत्सुक हो जाते हैं। परिणामों पर केंद्रित होना शायद व्यापार की दुनिया में सही होता होगा, पर आध्यात्मिकता के उसूल कुछ और ही होते हैं और आम तौर पर परस्पर विरोधी लगते हैं। पहला उसूल है – यदि सफल होना चाहते हो तो परिणामों को भूल जाओ।

शुरू में हमें नतीजों पर कम और अपनी मेहनत पर अधिक ध्यान देना चाहिये। ऐसा रवैया हमें अपने कार्य में अधिक कुशल बनाएगा तथा रास्ते में आनेवाली कठिनाइयों को सुलझाने में सहायक होगा। यदि हम वर्तमान पल को सँभाल लें तो हमारा भविष्य अपने आप सँभल जाएगा।

आध्यात्मिकता में जिस सोच की आवश्यकता है, वह भौतिक जगत की आवश्यकता से भिन्न है। आध्यात्मिकता की माँग है कि हम संसार के प्रति अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाएँ। बड़ी-बड़ी उम्मीदें रखे बिना जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में अधिक विनम्र बनें, ठीक एक बालक के समान जो लिखना सीख रहा होता है। वह बालक बिना किसी अपेक्षा के लिखना सीखने और अभ्यास करने में इतना मग्न हो जाता है कि वह बस अपना काम करता रहता है। नौसिखिये को कुशल बनने में समय तो लगता ही है। इसके लिये आवश्यक है धैर्य, प्रयास करते रहने की इच्छाशक्ति और जब तक आवश्यक हो, संघर्ष करते रहने का पक्का इरादा।

हमारे अंदर का योद्धा

हमारे मन की ऊँची और निचली वृत्तियों में कशमकश आजीवन चलती है और यह संघर्ष तब तक जारी रहता है, जब तक एक पक्ष की जीत नहीं हो जाती। निज मन की इस लड़ाई को जीतने के लिये हमें सहनशीलता, परिश्रम, देहधारी गुरु के मार्गदर्शन और सहारे की ज़रूरत है। यदि हमने संसार की असलियत को समझ लिया है, यदि हम अपने आप से और अपने अकेलेपन की पीड़ा से भागते-भागते थक गए हैं, यदि हम अनुभव करते हैं कि हम हर तरफ़ प्रेम का कोई विकल्प खोज रहे हैं, तो फिर हमारे पास निडर होकर संघर्ष करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

अंतर का यह संघर्ष है तो बड़ा कठिन, लेकिन क्या हम मोह के बंधनों के टूटने का दर्द और कठिनाई सहना चाहते हैं? यदि हाँ, तो क्या हम वह बलिदान देने के लिये तैयार हैं जो एक नए जीवन के एक नए दृष्टिकोण को अपनाने के लिये आवश्यक है? इसके बारे में ज़रा सोचें। संसार में अनेक आध्यात्मिक मार्ग हैं। यह मार्ग हर एक के लिये नहीं है, क्योंकि इसके लिये साहस, धैर्य और दृढ़संकल्प की आवश्यकता है।

प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो (Picasso) के जीवन का एक वृत्तांत इसी बात की पुष्टि करता है। पिकासो के चित्रों की अंतिम प्रदर्शनी पर एक महिला ने उससे पूछा: "श्रीमान्, आपके चित्र अति सुंदर हैं, लेकिन क्या एक बच्चा भी आपकी तरह चित्र नहीं बना सकता?" "जी हाँ, आपने एकदम सही कहा" पिकासो ने जवाब दिया, "अंतर केवल इतना है कि मुझे एक बच्चे की तरह चित्र बनाने में नब्बे वर्ष लग गए।"

एक बच्चे जैसी सादगी पुन: धारण करने के लिये पिकासो को बहुत समय देकर, मेहनत और धीरज से काम लेना पड़ा। इसी तरह हमें भी मेहनत करनी पड़ेगी और हम भी वह मासूमियत, वह सादगी, वह निर्मलता अपने जीवन में पुन: ला सकते हैं। आध्यात्मिकता के पाँच सिद्धांतों का सहारा लेकर संसार के प्रति फिर हमारा दृष्टिकोण ही बदल जाएगा, तब यह जीवन और अधिक शांतिपूर्ण, अधिक प्रेमपूर्ण और अधिक उपयोगी बन जाएगा।

पिकासो को फिर से एक शिशु के समान बनने के लिये वह सब कुछ भूलना पड़ा जो उसने सीखा था। हमें भी अपने जीवन में ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत है। जब हम परमार्थ के मार्ग पर कुछ स्थिर हो जाते हैं तब हम वर्तमान में जीने लगते हैं; फिर परिणामों का सवाल ही पैदा नहीं होता। परिणामों का विचार तो हमें तभी आता है जब हम इस अवस्था में नहीं होना चाहते, जहाँ हम हैं। जब हम मेहनत किये बिना फल की चाहत करते हैं, तब हम परिश्रम के आनंद का अवसर गँवा देते हैं। अभ्यास वह सहज परिश्रम है जो सादगी और पवित्रता को फिर हमारे जीवन का अंग बना देता है।

मोह के बंधनों से ऊपर उठना

अपने ख़ुद के मोल लिये कष्टों से छुटकारा पाने की एक मात्र दवा आध्यात्मिक अभ्यास है। यदि हम चाहते हैं कि यह दवा असर करे तो हमें अपने मोह के बंधनों को ढील देनी होगी और उन निरर्थक चाहतों का परित्याग करना होगा जो इस मायामय जगत में जीवन को और अधिक उलझा देती हैं। केवल आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा ही हम मृत्यु से पहले मोह के बंधनों से ऊपर उठना सीख सकते हैं।

हमारा जीवन इन मोह के बंधनों के दायरे तक सीमित नहीं रहना चाहिये – चाहे यह मोह किसी व्यक्ति, पालतू जानवर, वस्तु, व्यवसाय या नौकरी से हो। आंतरिक अभ्यास से मन शांत हो जाता है जिससे हमारी सोच सही और स्पष्ट होती है, फिर सब कुछ सही रूप में समझने में सहायता मिलती है। इसी अभ्यास द्वारा हमें इस बात की भी समझ आती है कि इस संसार में हम एक निश्चित अवधि के लिये ही आए हैं। यहाँ कुछ भी हमारा नहीं है और न ही हम किसी के हैं। जकड़कर रखने लायक़ यहाँ कुछ नहीं है। हम अपने मोह के बंधनों से आज़ाद हो सकते हैं। हम सब यहाँ मुसाफ़िर हैं। हर उस चीज़ का मोह त्याग सकते हैं जो स्थायी नहीं है।

आंतरिक अभ्यास से हमें यह बोध हो जाता है कि जीवन में सब कुछ अस्थायी है। भले ही हम अपने शरीर को, किसी व्यक्ति को, किसी काम

या वस्तु को कितना भी समय क्यों न दें, आख़िर मृत्यु के समय हमें उसको छोड़ना ही पड़ेगा। न चाहते हुए भी हमें सब कुछ छोड़ना ही है। इसलिये संत हमें मृत्यु से पहले ही अपने मन से इन मोह के बंधनों को ढील देने का सुझाव देते हैं और जितना जल्दी हम उनसे विरक्त हो जाएँगे, उतने ही हम सुखी रहेंगे।

जैसा कि पहले बताया गया है कि आंतरिक अभ्यास द्वारा हम मन को शांत करना सीखते हैं। जब मन कुछ स्थिर हो जाता है, तब हमें यह समझ आने लगती है कि हम मन से अलग हैं। दूसरों के गुण-दोष निकालने की आदत हमारे अहंभाव को बढ़ा देती है। अभ्यास इस बुरी आदत से छुटकारा दिलाने में और भ्रम पैदा करनेवाली हमारी सोच को दूर करने में सहायता करता है। जब मन दूसरों की आलोचना करना छोड़ देता है और इसकी विचारों की लहरें थम जाती हैं, तब हमें अपनी वास्तविक स्थिति दिखाई देने लगती है। संभव है कि हमें यह अच्छा न लगे, किंतु उन्नति की एक ही राह है कि हम अपने अंदर छिपे विकारों को पहचानकर अपनी कमज़ोरियों का एहसास करें और इनसे जूझने की कोशिश करें। एक शराबी, एक नशाख़ोर या एक उन्मादग्रस्त व्यक्ति, अपना इलाज तब तक शुरू नहीं कर सकता, जब तक वह अपनी मूल समस्या को पहचानकर उसे स्वीकार न कर ले। अपने आप को बदलने के लिये यह ज़रूरी है कि हम पहले अपने आप को पहचानें।

यह दुनियावी प्रेम और मोह के बंधन जिनमें हम कसकर जकड़े हुए हैं, हमारे लिये दु:ख का कारण बनते हैं। ये आध्यात्मिक यात्रा में रुकावट डालते हैं और एक संपूर्ण जीवन का आनंद लेने में विघ्न डालकर हमारे लिये जीवन को पूरी तरह से समझना कठिन बनाते हैं। मोह यह भ्रम पैदा कर देता है कि हम इस संसार के वासी हैं। लेकिन हम यहाँ के वासी नहीं हैं, यह हमारा सच्चा घर नहीं है। यहाँ सब कुछ बदलता रहता है और कुछ भी सदा के लिये नहीं रहता। एक चीज़ जो यहाँ सदा विद्यमान रहेगी वह है हमारी सच्ची सत्ता यानी वह शब्द, जो शाश्वत चेतना, शाश्वत सत्ता और परम आनंद है। आंतरिक अभ्यास ही वह एकमात्र साधन है जिसके

द्वारा हम सब अपने अनंत स्वरूप से संपर्क स्थापित कर सकते हैं और अपनी पहचान कर सकते हैं।

केवल आध्यात्मिक अभ्यास की पहुँच इतनी गहरी है कि यह हमारी सभी समस्याओं को जड़ से निकाल देती है। हवाई क़िले बनानेवाले हमारे मन के विचार, इसके खोखले दावे और तरह-तरह के इलाज बीमारी की सतह को बस छू पाते हैं। ये थोड़े समय के लिये असर कर सकते हैं, लेकिन कुछ समय बाद इनकी शक्ति क्षीण हो जाती है और हम वापस अपनी पुरानी आदतों की ओर खिंचे चले जाते हैं। ये साधन ऐसे ही हैं जैसे कैंसर के लिये ऐसप्रिन की गोली ले लेना! शब्द का अभ्यास समस्या की जड़ों पर वार करता है। यह हमारे मोह के बंधनों को तोड़कर हमें परम आनंद और शक्ति के भंडार यानि आदिस्रोत से जोड़ देता है।

आध्यात्मिक अभ्यास हमारे अंदर निहित सद्‌गुणों को उभारता है और उन्हें उभारने में जो रुकावटें हमारे सामने आती हैं, उनको दूर करता है। सही तरीक़े से अभ्यास करने पर हम अपने मूल के निकट जाना आरंभ करते हैं और तब सहज रूप से हमारे सद्‌गुण प्रकट होने लगते हैं। ये गुण हमारे अंदर इस तरह उभर आते हैं जैसे दूध के ऊपर मलाई। अभ्यास द्वारा हमारी विकारी वृत्तियाँ बदलने लगती हैं – क्रोध शांति में, काम शील में, लोभ संतोष में, अहंकार विनम्रता में और मोह सच्चे प्रेम में बदल जाता है।

जैसे-जैसे हमें अपने अंदर शब्द का बोध होने लगता है, वैसे-वैसे जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आने लगता है। स्वाभाविक रूप से हम अपनी प्राथमिकताएँ बदल लेते हैं और प्रयत्न करते हैं कि हमारा व्यवहार हमारी असलियत से तथा सारे संसार से तालमेल रखता हो। हालाँकि हमारी कठिनाइयाँ समाप्त नहीं होतीं, किंतु हम उनका सामना करने में अधिक सक्षम और प्रबल हो जाते हैं। हम अपना संतुलन नहीं गँवाते तथा अपने अंदर की शांति को भी बरक़रार रखते हैं।

वह शांति जो हम आंतरिक अभ्यास द्वारा अनुभव करते हैं, वह किसी बाहरी हालात पर निर्भर नहीं होती। उस शांति में हमें वास्तविकता का बोध होता है। हम जो भी करते हैं, यह अभ्यास हमें उसमें अधिक केंद्रित,

दक्ष तथा सफल बनाता है। अभ्यास द्वारा हम अपने जीवन को दिशा देते हैं और अपने आप को निर्मल करते हैं। इससे तनावों और व्यर्थ के मनोविकारों से छुटकारा मिलता है। अभ्यास मन को स्थिर कर देता है और हमारी सोई हुई आत्मा को फिर से जाग्रत करता है। अभ्यास हमारे अंदर समाए गहरे प्रेम को उभारता है। परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने का, उसे अनुभव करने का और उसमें समा जाने का एकमात्र साधन बस आंतरिक अभ्यास ही है।

प्रेम पर हमारे प्रतिबंध

संत उपदेश देते हैं कि प्रेम ही जीवन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अविचल शक्ति है। सुखी और संतुलित जीवन बिताने के लिये किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा, प्रेम ही सबसे ज़्यादा कारगर होता है। लेकिन जब तक प्रेम हमारे जीवन का सबसे अधिक प्रभावशाली गुण नहीं बन जाता, तब तक हमारा मन और हमारी इंद्रियाँ, इसके अबाध प्रवाह को सीमित करते रहेंगे।

ज्ञान की सीमाएँ

ईश्वर की शक्ति का दूसरा नाम प्रेम है जो असीम और सर्वव्यापक सत्य है। इस समय बुद्धि की प्रधानता के कारण हम ईश्वरीय प्रेम के प्रति अधिक जागरूक नहीं हैं। बुद्धि केवल तर्क-वितर्क या जाँच-परख ही कर सकती है, लेकिन यह उस असीम और अनश्वर को नहीं समझ सकती जो केवल आत्मा द्वारा अनुभव किया जा सकता है। हम ईश्वर को समझ नहीं सकते, क्योंकि वह सत्य जिसे परमात्मा कहते हैं, मन तथा बुद्धि की पहुँच से परे है। केवल उसके विषय में सोचने से हम ईश्वर का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकते, चाहे हम सैकड़ों किताबें पढ़ लें या हज़ारों तरह से विचार कर लें।

यह आवश्यक है कि हम अपनी बुद्धि की उन सीमाओं को स्वीकार कर लें जिनका हम असीम परमात्मा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा करते समय सामना करते हैं। *लिब्रेशन ऑफ़ सोल* में स्टेनले व्हाइट (Stanley White) ने ईश्वर को समझने के लिये बुद्धि की सीमाओं की चर्चा की है। वह कहते हैं, "विज्ञान के अनुसार हमारी बुद्धि की एक सीमित सत्ता है, इसका अर्थ है कि इसकी सीमाएँ हैं। यह केवल एक सीमा तक कुछ कर सकती है और इसके परे, कुछ नहीं। उदाहरण के लिये, काग़ज़ और पैंसिल की सहायता के बिना हम अपने मन में अंकों को गुणा कर सकते हैं, लेकिन हम केवल एक निश्चित सीमा तक ही ऐसा कर सकते हैं और उससे आगे विफल हो जाते हैं। यद्यपि ध्वनि का स्पेक्ट्रम (Spectrum) हमारे सुनने की शक्ति की सीमा से ऊपर और नीचे भी प्रसारित होता है, फिर भी हम केवल एक विशेष सीमा तक ही ध्वनि-तरंगों को सुन सकते हैं। हम एक्सरे, इन्फ्रा रैड या अल्ट्रा वॉयलेट (पराबैंगनी) किरणों को देख नहीं सकते, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका अस्तित्व ही नहीं है, बल्कि इससे यह पता चलता है कि हम अपनी इंद्रियों के द्वारा उनके अस्तित्व को अनुभव करने में असमर्थ हैं।

"इस समय भी स्थानीय प्रसारण केंद्रों द्वारा रेडियो तरंगों की हम पर बौछार हो रही है, लेकिन हम उनके अस्तित्व की पुष्टि तब तक नहीं कर सकते, जब तक हम एक विशेष रूप से बनाए गए उपकरण, रिसीवर (रेडियो) द्वारा उन ध्वनि-तरंगों के साथ संपर्क स्थापित नहीं कर लेते। हममें से कोई ही इतना मूर्ख होगा जो केवल इस कारण रेडियो और दूरदर्शन प्रसारणों के अस्तित्व को नकार देगा, क्योंकि हम बिना किसी उपकरण की सहायता से अपनी इंद्रियों द्वारा उन्हें नहीं सुन सकते। इस प्रकार हम जीवन के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को जान पाए हैं... कि ऐसी भी कई चीज़ें हैं जिन्हें हम इंद्रियों द्वारा नहीं जान सकते।

"... महान धर्मगुरुओं ने कहा है कि ईश्वर अनंत है। इसका अर्थ है कि वह किसी भी प्रकार की सीमा से परे है। फिर एक सीमित सत्ता (मन) द्वारा उस असीम ईश्वर को कैसे समझा जा सकता है? स्पष्ट है

कि हम एक गंभीर समस्या में उलझ गए हैं। मन ऐसी सत्ता को कैसे समझ सकता है जो उससे कहीं अधिक महान है?

" ...यह पढ़ते समय आपको याद रखना होगा कि प्रत्येक विचार की विस्तार से व्याख्या करना शायद संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा अनुभव जो मन तथा माया के दायरे से परे है, वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता...। चूँकि ये शब्द मन के दायरे में हैं अत: भाषा के शब्द ऐसे सत्य का वर्णन नहीं कर सकते जो मन द्वारा प्राप्त अनुभवों से परे है। आओ, इस बात को अच्छी तरह समझकर अपनी पूरी योग्यता के अनुसार कुछ शब्दों का प्रयोग करके मन को ऐसे आध्यात्मिक रहस्य समझाने का प्रयास करें जिनसे इसका हित हो सके।"

निष्कर्ष यह है कि केवल वही ज्ञान सार्थक है जिसका उपयोग हम ईश्वर की तथा अपनी वास्तविकता को समझने में करते हैं। जीवन के कुछ अन्य पक्षों में सहायक होने पर भी, बाक़ी का सारा ज्ञान इतना अधूरा है कि अपने वास्तविक स्वरूप से संपर्क करने और अपने भीतर ईश्वर की शक्ति को पहचानने में हमें इससे कोई सहायता नहीं मिलती।

हम इस शक्ति को अनुभव द्वारा ही समझ सकते हैं, इसके बारे में पढ़ने या सोचने से नहीं जान पाते। इसका अनुभव करने के लिये हमें अपने भीतर चेतना के ऊपरी मंडलों तक पहुँचने की आवश्यकता है। 'आध्यात्मिक जीवन' से हमारा अभिप्राय उस जीवन से है जिसमें उस परमशक्ति के साथ मिलाप होता है, न कि वह जीवन जो केवल इसके बारे में सोचने, पढ़ने या इसके बारे में चर्चा करने में बिताया गया है।

ईश्वर सर्वव्यापक है, सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है अत: वह हम सबमें भी विद्यमान है, क्योंकि हम भी सृष्टि का ही हिस्सा हैं। मनुष्य अपना पूरा ज़ोर ईश्वर को अपने अंदर के बजाय बाहर खोजने में लगा देता है। इसलिये स्वाभाविक है कि अपने अंदर उसकी खोज के बारे में हम कभी नहीं सोचते। यह संतों के उपदेश का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, क्योंकि यह हमें हमारी भूल से अवगत कराता है तथा यह संकेत भी करता है कि हमें उसकी खोज कहाँ करनी चाहिये। सीधा-सा सिद्धांत है,

जिस सृष्टि कर्ता की हमें खोज है, वह कहीं बाहर नहीं मिलेगा। उसे मनुष्य के शरीर के अंदर ही अनुभव करना होगा।

एक बार ईश्वर की शक्ति को अपने अंदर अनुभव करने पर हम अपनी सीमित धारणाओं से ऊपर उठ जाएँगे और यह जान लेंगे कि वह सर्वत्र है – सृष्टि में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ वह न हो। संत हमें बताते हैं कि सृष्टि में ईश्वर को देखना तब तक संभव नहीं है, जब तक हमने उसे पहले अपने अंतर में अनुभव न किया हो।

धार्मिक अनुष्ठानों तथा कर्मकांड की सीमाएँ

हम असीम प्रेम के द्वारा ईश्वर तक पहुँचने के बजाय कर्मकांड और परंपराओं में उलझ जाते हैं। सभी धर्म मानव-जाति के लिये एक ही प्रकार के नैतिक मूल्यों तथा आध्यात्मिक सच्चाइयों का उपदेश देते हैं। उनके मुख्य उपदेश हैं कि सभी लोग अच्छे आचरण का पालन करें, सृष्टिकर्ता पर विश्वास रखें, उससे प्रेम करें और उसके साथ मिलाप का यत्न करें।

इस युग के धर्म इन मूलभूत आध्यात्मिक विषयों पर बल देने के बजाय हमें गुज़रे हुए संत-महात्माओं, जैसे ईसा मसीह, मूसा, हज़रत मुहम्मद, महात्मा बुद्ध, श्रीकृष्ण, लाओ-त्से, गुरु नानक आदि की पूजा या उपासना करने को कहते हैं। ये हमें यह नहीं बताते कि इन संत-महात्माओं ने आध्यात्मिक संपूर्णता कैसे प्राप्त की या हम उनके वास्तविक रूप से कैसे मिल सकते हैं, ताकि हम भी यह विधि सीख सकें। ये विभिन्न धर्मग्रंथों में आस्था रखने की ज़रूरत पर तो बल देते हैं, परंतु यह नहीं बताते कि हम उन धर्मग्रंथों में बताए आध्यात्मिक अनुभवों को स्वयं कैसे प्राप्त कर सकते हैं। ये यह तो बताते हैं कि हमारा लक्ष्य ईश्वर के साथ मिलाप करना है, लेकिन उसे प्राप्त करने के साधन बताने में असफल हो जाते हैं। ये मुक्ति दिलाने का विश्वास तो दिलाते हैं, लेकिन आस्था और निष्ठा रखने पर और वह भी मृत्यु के बाद।

परमात्मा की अनुभूति का स्थान धार्मिक रीतियों और कर्मकांड ने ले लिया है। हम गिरजाघरों, गुरुद्वारों, प्रार्थनाभवनों और मंदिरों में निर्धारित

किये हुए पवित्र दिनों में जाने से संतुष्ट हो जाते हैं और सोच लेते हैं कि इस प्रकार के धार्मिक आयोजनों में उपस्थित होकर और किसी पादरी, मुल्ला या पंडित से पवित्र धर्मग्रंथ का पाठ सुनकर हम मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। लेकिन यह तो केवल मन का भ्रम है।

यदि हमारा लक्ष्य ईश्वर के साथ मिलाप करना है तो यह मिलाप कर्मकांड और धार्मिक परंपराओं से कैसे संभव हो सकता है? पूजा पद्धतियाँ, कर्मकांड, धार्मिक रीतियाँ और पूजा के स्थान, हमारे प्रयत्नों का दायरा सीमित कर देते हैं और अपने भीतर उसकी खोज करने के हमारे प्रयासों में बाधा डालते हैं, क्योंकि ये कर्मकांड हमें आंतरिक खोज के बजाय बाहरी पूजा में लगा देते हैं। जैसा बाइबल में कहा गया है, "परमेश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अंदर है" (ल्यूक 17:21)। अथवा जैसा सेंट पॉल ने कहा है, "क्या तुम्हें मालूम नहीं कि तुम ही परमेश्वर का मंदिर हो और ईश्वरीय अंश का तुम्हारे भीतर निवास है?" (2 कोरिन्थियन्ज़ 6:16)। हममें से अधिकांश लोग बाइबल के इन शब्दों से परिचित हैं। लेकिन क्या हम इन शब्दों को समझते हैं और इन पर विचार करते हैं? स्पष्ट है कि हम ऐसा नहीं करते। वास्तव में हमारे मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि किस प्रकार हम परमात्मा को भौतिक स्तर तक ही सीमित करने का प्रयास करते हैं। परंतु हम उस असीम को सीमा में कैसे बाँध सकते हैं? उस सर्वव्यापक परमात्मा को ईंट, मिट्टी, पत्थर की दीवारों में कैसे क़ैद किया जा सकता है?

संत सत्य की ओर संकेत करते हैं और ईश्वरीय सत्य की ओर ले जानेवाला एक सहज-मार्ग बताते हैं जो प्रत्येक मनुष्य के अंदर है। वे कहते हैं कि यह मार्ग आत्म-साक्षात्कार का एक क़ुदरती मार्ग है। यह परमात्मा द्वारा बनाया गया है तथा मनुष्य के अस्तित्व में आने के साथ ही आया है। यह मनुष्य द्वारा बनाया हुआ नहीं है। इसका कर्मकांड और धार्मिक रीतियों से कुछ लेना-देना नहीं है और न ही यह नैतिक आचरण या सत्कर्मों तक सीमित है। संत-महात्मा कहते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है और सभी धर्म उसके साथ मिलाप करने का प्रयास भी करते हैं। ईश्वर के

साथ मिलाप करने के मार्ग को आम तौर पर धर्म कहा जाता है। रिलीजन, अर्थात् 'धर्म', शब्द लेटिन भाषा के शब्द रिलिगेयर से आया है जिसका अर्थ है 'बाँधना' या 'जोड़ना'। इसका वास्तविक उद्देश्य इसके मूल में छिपा हुआ है। रिलीजन का अर्थ है 'ईश्वर के साथ फिर से जुड़ जाना।' हम अपने आप को ईश्वर के साथ केवल तभी जोड़ सकते हैं, अगर हम उसे अपने अंतर में खोज लें। उसे पाने का आंतरिक मार्ग सबके लिये समान है। कोई भी व्यक्ति जो ईश्वर को याद करता है और अंतर में उसके साथ मिलाप कर लेता है, उसे ही परमात्मा का सच्चा भक्त कहा जा सकता है, चाहे वह कोई भी हो।

परमात्मा ने मनुष्य की रचना की और बाद में मनुष्य ने अपने को ईसाई, बौद्ध, यहूदी, सिक्ख, मुसलमान इत्यादि धर्मों में बाँट लिया। पाँच सौ साल पहले कोई सिक्ख नहीं थे, तेरह सौ साल पहले कोई मुसलमान नहीं थे, दो हज़ार साल पहले कोई ईसाई नहीं थे, ढाई हज़ार साल पहले कोई बौद्ध नहीं थे और चार हज़ार साल पहले कोई यहूदी नहीं थे। लोग तो लोग ही हैं, चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के, और सभी एक समान हैं क्योंकि हर एक के अंतर में जो आत्मा है वह उसी एक रचयिता की अंश है।

ईश्वर एक है, यद्यपि अपने सीमित दृष्टिकोण के कारण हम उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। जैसे एक व्यक्ति अपनी प्यास बुझाने के लिये वॉटर (पानी) माँगता है। किसी दूसरे देश का व्यक्ति आगुआ (पानी) माँगता है और कोई तीसरा पानी माँगता है, परंतु ये सब उसी H_2O (पानी का रासायनिक मिश्रण) को माँग रहे हैं चाहे वे इसे किसी भी नाम से पुकारें।

किसी भी धर्म से संबंधित होने से हमें ईश्वर प्राप्ति में कोई बाधा नहीं आती। ईश्वर से मिलाप करने के लिये अपने पारंपरिक धर्म को छोड़ना आवश्यक नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अमीर हो या ग़रीब अथवा किसी भी धर्म से संबंध रखता हो, अपने अंदर ईश्वर से मिलाप कर सकता है।

संत हमें बताते हैं कि यद्यपि ईश्वर को शरीररूपी मंदिर में पाया जा सकता है, परंतु आत्मा और ईश्वर के बीच में अहं का परदा है और उसी कारण आत्मा परमात्मा को देख नहीं सकती। दोनों इसी मंदिर में एक ही जगह निवास करते हैं, परंतु आपस में मिलाप नहीं होता। कोई भी कर्मकांड या धार्मिक रीति इस सत्य को बदल नहीं सकती। केवल सच्ची आध्यात्मिकता अर्थात् आंतरिक साधना का अभ्यास ही इस परदे को हटा सकता है।

हमारी पूजा-अर्चना की सीमाएँ

मनुष्य-शरीर ही ईश्वर का वास्तविक गिरजाघर या मंदिर है। यह एक सीधी-सादी सच्चाई है, फिर भी लाखों में कोई विरला मनुष्य ही अपने अंदर परमात्मा की खोज करता है। संत कहते हैं कि बाहरी पूजा का न केवल सीमित दायरा है, बल्कि व्यर्थ भी है। सेंट पॉल कहते हैं, "ईश्वर के मंदिर का मूर्तियों के साथ क्या संबंध? क्योंकि तुम ही ईश्वर के जीते-जागते मंदिर हो" (*2 कोरिन्थियन्ज़* 6:16)।

यदि कोई हमारे गिरजाघर या मंदिर की खिड़की पर पत्थर फेंकता है, तो हो सकता है कि हम गुस्से में उसके पीछे भागें और उसे मंदिर को अपवित्र करने के लिये सज़ा दें – हालाँकि परमात्मा पत्थर फेंकनेवाले उस व्यक्ति में भी वास करता है। प्रतिदिन हम ईश्वर के सच्चे मंदिर, इस मनुष्य-शरीर को हर प्रकार के गंदे विचारों और खोटे कर्मों से तबाह कर रहे हैं। हम सारे भौतिक ब्रह्मांड में ईश्वर की खोज करते हैं, लेकिन यह नहीं पहचान पाते कि उसे कहाँ पाया जा सकता है जो हम सबके अंतर में है। हम मूर्खतावश यह मान लेते हैं कि संत-महात्मा तो केवल काल्पनिक या प्रतीकात्मक रूप में कहते हैं कि उस ईश्वर को अपने अंतर में पाया जा सकता है। हम उनके शब्दों के असली अर्थ को समझने में असफल हो जाते हैं।

जब हम उस परमात्मा से सांसारिक वस्तुओं की माँग करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे एक मंडी में सौदेबाज़ी कर रहे हों। इस तरह हम ईश्वर के प्रति अपना श्रद्धा का दायरा सीमित कर देते हैं। अकसर हमारी माँगों

का संबंध भौतिक या सांसारिक वस्तुओं से होता है, जैसे अच्छा स्वास्थ्य, धन-दौलत या सांसारिक रिश्ते-नाते। जो हम चाहते हैं, यदि हम वह पाने में सफल हो भी जाते हैं तो हम इस संसार में और अधिक उलझ जाते हैं। इस प्रकार की पूजा उस व्यापारिक लेन-देन जैसी ही है, जिसमें हम ईश्वर को रिश्वत देने का प्रयास करते हैं। हम मन्नतें माँगते हैं कि यदि ईश्वर हमें वह सब कुछ दे-दे जो हम चाहते हैं, तब हम इतना दान देंगे या हम अमुक काम करेंगे। वास्तव में यह सीमित श्रद्धा 'आध्यात्मिक भौतिकवाद' के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जहाँ तक आध्यात्मिकता का संबंध है, ये दिखावटी बातें सब व्यर्थ हैं।

आध्यात्मिक भौतिकवाद का दूसरा रूप है परोपकार के लिये किये गए कर्मों को ही आध्यात्मिकता समझ लेने की भूल करना। सच्चे आध्यात्मिक गुरुओं को इस संसार को बदलने से कोई सरोकार नहीं होता। वे जानते हैं कि यह संसार आत्मा के लिये ज्ञान प्राप्त करने का एक पड़ाव है। जिस प्रकार प्राथमिक कक्षा से विश्वविद्यालय के स्तर तक पहुँचने के कई पड़ाव होते हैं, ठीक उसी प्रकार आत्मा की यात्रा में भी ज्ञान प्राप्त करने के कई पड़ाव आते हैं। यह संसार भी उन पड़ावों में से एक है।

जो आत्मा इस संसार में शरीर धारण करती है, उसे इस 'धरती' नामक विद्यालय में पढ़ाए जानेवाले विषयों का ज्ञान प्राप्त करना होता है। पूरे जीवन-काल में मनुष्यों के लिये बार-बार इन्हीं विषयों की व्याख्या की जाती है। ये विषय एक दूसरे के विपरीत रूप में प्रस्तुत होते हैं, क्योंकि हमें हमेशा ही प्रेम और घृणा, काम और आत्मसंयम, लोभ और संतोष, क्रोध और क्षमा, रोग और आरोग्य, जीवन और मृत्यु आदि का सामना करना पड़ता है। यह द्वैत ही संसार का स्वरूप है। जब तक दिन हैं, रातें भी होंगी। जब तक अमीरी है, ग़रीबी भी होगी, जब तक युद्ध है, शांति भी होगी। हमारा उद्देश्य इस द्वैत से ऊपर उठकर इस संसाररूपी विद्यालय से स्नातक की उपाधि (graduation degree) अर्थात् सबसे ऊँची अवस्था प्राप्त करना होना चाहिये, तभी हम वास्तविक आध्यात्मिक निज धाम पहुँचेंगे।

अगर हम तैरना नहीं जानते तो हम किसी और को डूबने से कैसे बचा सकते हैं? यदि हम तैरना सीखने पर ध्यान केंद्रित करते हैं तो क्या यह हमारा स्वार्थ है? केवल तैरना सीखने के बाद ही हम उनकी सहायता कर सकते हैं जो डूब रहे हैं। इस संसार की अवस्था की आलोचना करना बहुत आसान है, परंतु हम दूसरों में दोष खोजने के कभी न ख़त्म होनेवाले विवादों में न पड़ें। यदि हम सब एक बेहतर इनसान बन जाएँ, तो हम इस संसार को सुधारने में कहीं ज़्यादा योगदान दे सकते हैं।

अस्पताल, गिरजाघर, धर्मशालाएँ और विद्यालय बनवाना और अन्य परोपकारी कार्य जैसे बीमारों, मरणासन्न और ज़रूरतमंदों की सेवा करना – ये सभी प्रशंसनीय मानवतावादी प्रयास हैं और यह भी सत्य है कि ऐसे कार्य करने पर हमें संतोष मिलता है। परंतु कठिनाई तो यह है कि मानवतावाद को ही आध्यात्मिकता समझने की भूल की जाती है। ऐसे परोपकारी कार्य अपने में अच्छे होते हुए भी हमें ईश्वर तक नहीं ले जा सकते। जब तक एक व्यक्ति सचेत होकर अंतर्मुख नहीं होता, चेतना का विस्तार नहीं करता तथा ईश्वर से मिलाप करके ईश्वर का रूप नहीं हो जाता, तब तक सभी बाहरी प्रयास चाहे वे कितने ही उत्तम क्यों न हों, व्यर्थ ही चले जाते हैं।

विभिन्न धर्म हमें परोपकारी कार्य करने, प्रार्थना करने और नैतिक जीवन जीने के लिये हमारा उत्साह बढ़ाते हैं, वे इन कार्यों को ही धर्म का असली उद्देश्य मानते हैं। यद्यपि ये कार्य बहुत अच्छे हैं, परंतु ये काफ़ी नहीं हैं, क्योंकि ये हमें आध्यात्मिक मंडलों के निचले स्तर से आगे नहीं ले जा सकते। जब हमारे अच्छे कर्मों का पुण्यफल समाप्त हो जाता है, तो आत्मा को फिर से चेतना के इसी धरातल पर वापस आना पड़ता है और फिर उसे नए सिरे से शुरुआत करनी पड़ती है, क्योंकि जिन स्वर्गों में जाकर हमें अपने अच्छे कर्मों का पुण्यफल प्राप्त होता है, वे सब मन के दायरे में हैं। आध्यात्मिक मंडलों की इस जटिलता का हवाला देते हुए ईसा मसीह कहते हैं: "मेरे पिता के घर में कई हवेलियाँ हैं" (जॉन 14:2)।

जब हम परमात्मा के सामने कुछ निश्चित की हुई प्रार्थनाएँ करते हैं, तो उसके साथ हमारा संबंध सीमित हो जाता है। यदि परमात्मा में हमारी

इच्छाओं को पूरा करने की शक्ति है, तो निश्चय ही उसमें यह जानने की शक्ति भी है कि हमें क्या चाहिये? अपने विश्वास की कमी के कारण ही हम उसके सामने अपनी माँगें रखते हैं, जैसे कि उसे पता नहीं कि हमें क्या चाहिये। जब हम कोई निश्चित की हुई प्रार्थनाएँ करते हैं, तो क्या हम उसके प्रति अपने प्रेम के सहज प्रवाह को रोककर नहीं रखते? क्या हमें अपने प्रियजनों से बात करने के लिये कुछ निश्चित शब्द बोलने की आवश्यकता होती है? क्या परमात्मा इतना बहरा है कि हमें अपनी प्रार्थनाओं को बार-बार दोहराने की आवश्यकता पड़ती है? क्या हम उसकी पूजा इस डर से करते हैं कि वह हमारा कुछ बुरा न कर दे? या अपने निजी स्वार्थ से प्रेरित होकर करते हैं कि वह हमारी इच्छाएँ पूरी कर दे? दोनों ही तरह की, डर या स्वार्थ से प्रेरित प्रार्थना बहुत सीमित होती है। हमारे लिये परमात्मा की भक्ति का कारण केवल प्रेम ही होना चाहिये। फ़ारस की एक महिला संत राबिया बसरी ने कहा है: "काश! मैं नरक के द्वार को बाढ़ में बहा सकती, ताकि कोई भी तुम्हारी भक्ति डर से न करे और काश! मैं स्वर्ग के द्वार को आग लगा सकती, ताकि कोई भी तुम्हारी भक्ति स्वर्ग की आस से न करे। फिर सब तुम्हारी भक्ति केवल प्रेम के लिये ही करेंगे।"

प्रेम की सीमाओं के पार निकलना

हमारे सीमित दृष्टिकोण के कारण जीवन पर लगे हुए प्रतिबंधों और सीमित दायरों को केवल प्रेम ही मिटा सकता है। प्रेम ही रचना में सबसे प्रबल शक्ति है। प्रेम के बिना जीवन नीरस और व्यर्थ है। प्रेम से रहित एक विशाल भवन भी भयानक क़ब्रिस्तान लगता है। प्रेम के प्रकाश से भरपूर एक टूटी-फूटी साधारण-सी कुटिया भी सौंदर्य से जगमगा उठेगी। प्रेमरूपी ख़ज़ाना संसार के सभी ख़ज़ानों से बड़ा है। प्रेम नहीं है तो कुछ भी नहीं है और प्रेम है तो सब कुछ है। जैसा कि महाराज सावन सिंह जी *फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ द मास्टर्ज़ (Philosophy of the Masters)* में कहते हैं:

"सृष्टि की उत्पत्ति से पहले परमात्मा चेतना का अथाह सागर था। वह प्रेमरूप, आनंदस्वरूप तथा अपने में संपूर्ण था। वह सब कुछ स्वयं

ही था और वह परम आनंद की शांतिपूर्ण अवस्था में था। उसका मूल रूप प्रेम ही था। वह प्रेम अन्य किसी के लिये नहीं था, क्योंकि तब उसके अतिरिक्त अन्य किसी का भी अस्तित्व नहीं था। इसलिये यह प्रेम उसके अपने ही लिये था और उसका अभिन्न अंग था। इस प्रेमभाव के लिये वह किसी पर भी निर्भर नहीं था। उस ईश्वरीय प्रेम की ऐसी ही अकथ अवस्था है।"

प्रेम ईश्वरीय चेतना का दूसरा नाम है। यह ईश्वरीय चेतना ही है जो सृष्टि में संतुलन और तालमेल बनाए रखती है। इसलिये सब प्रबल शक्तियाँ जो इस सृष्टि में कार्य कर रही हैं, परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि पूर्ण संतुलित रूप में एक साथ विद्यमान हैं। यदि हम अपने आप को ईश्वरीय चेतना के साथ जोड़ दें, तो हम भी उस पूर्ण तालमेल का आनंद ले सकेंगे। वही शक्ति जो सारी रचना को थामे हुए है, निरंतर हमारे जीवन को आधार और पोषण दे रही है। इस सृष्टि की रचनात्मक शक्ति प्रेम ही है जिसमें विवेक, आनंद और संतुलन समाहित है। संत–महात्मा हमें इसी शक्ति से जोड़ने के लिये आते हैं, ताकि हम उन सब सांसारिक सीमाओं से ऊपर उठ सकें और उस अनंत प्रेम, संतुलन तथा आनंद को फिर से अनुभव कर सकें।

15

राजमार्ग

संतों के मार्ग के बारे में डॉ. जॉनसन (Dr. Johnson) अपनी पुस्तक विद अ ग्रेट मास्टर इन इंडिया (हिंदी अनुवाद: मेरा सतगुरु) में लिखते हैं: "यह मार्ग एक धारणा अथवा कल्पना ही नहीं है। यह विश्वास या सिद्धांतों पर आधारित कोई पद्धति नहीं है। यह कोई धर्म भी नहीं है, यद्यपि सभी धार्मिक मूल्य इसमें समाहित हैं। यही एक वास्तविक मार्ग है, यात्रा के लिये एक सच्चा मार्ग जिस पर आगे बढ़ते समय नि:संदेह कुछ तैयारी तथा अभ्यास की आवश्यकता है। वास्तव में इसके लिये मार्ग शब्द पूरी तरह उचित नहीं है। इसे 'राजमार्ग' अथवा 'शाही राजमार्ग' कहना अधिक सही लगता है। महान संत-सतगुरुओं का यह मार्ग आध्यात्मिक यात्री को इस भौतिक जगत से ऊपर की ओर बढ़ते हुए, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तथा एक से बढ़कर एक शानदार मंडलों में ले जाता है, जब तक कि यात्री अपने अंतिम पड़ाव तक नहीं पहुँच जाता। सभी धर्मों के सर्वोच्च प्रभु के चरणकमलों तक पहुँचना ही अंतिम पड़ाव है। यह वास्तविक राजमार्ग है जिस पर यात्रा करते हुए संत तथा उनके शिष्य, अनगिनत विशाल मंडलों में से गुज़रते हैं और भिन्न-भिन्न पड़ावों पर विश्राम करते हैं।

"इस यात्रा में एक के बाद एक सफलताएँ मिलती हैं, क्योंकि संतों के शिष्यों में यह योग्यता आ जाती है कि प्रत्येक मंडल में प्रवेश करते ही वे

उस मंडल के विषय में सब कुछ जान लेते हैं, उसका ज्ञान तथा शक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ रहने के अधिकारी हो जाते हैं। संत-सतगुरु वह महान कप्तान हैं जिनके नेतृत्व में आत्मा एक के बाद एक सफलता प्राप्त करती है। यह मार्ग लंबा और कठिन है, परंतु संत-सतगुरु इस पर अनेक बार यात्रा कर चुके होते हैं और इसके पूरे जानकार होते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक यात्रा सफलताओं की एक लंबी शृंखला है जो यात्री की आख़िरी और सबसे ऊँची मंज़िल तक पहुँचने पर ही समाप्त होती है।"

संतों की शिक्षा एक आध्यात्मिक विज्ञान है जिसके प्रयोग हमारी शरीररूपी प्रयोगशाला में किये जाते हैं। ये प्रयोग करने के लिये हमें अपनी प्रयोगशाला को व्यवस्थित करना होगा और अपने जीवन में व्यवस्था लानी होगी। हमें अपनी प्राथमिकताओं को सही ढंग से निर्धारित करना होगा और उनके अनुसार कार्य करने होंगे। हमारे कार्य हमारे इरादों के अनुकूल होने चाहियें। अपने लिये परिणामों की सफलता साबित करने के लिये हमें धैर्य से काम लेना होगा।

आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण

वास्तव में हम जीवन से क्या चाहते हैं? जो कर्म हम करते हैं, उनका उद्देश्य क्या है? जो मार्ग हमने चुना है वह हमें कहाँ ले जा रहा है? क्या वास्तव में हमारा कोई लक्ष्य है, अथवा हम भ्रमों के चक्कर में पड़े हुए हैं? क्या हम अपने जीवन से ख़ुश हैं?

अगर हमारे पास इन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर नहीं हैं तो हमें सच्चे दिल से एक ऐसे मार्ग की तलाश करनी चाहिये, जिस पर चलकर हम संसार में विचरते हुए अपने अंतर के अच्छे गुणों का पूरा विकास करें।

यदि अपने जीवन की पूरी सामर्थ्य को विकसित करने का हमारा इरादा मज़बूत है, तो हमें अपनी आध्यात्मिकता की गहराई तक पहुँचना होगा। यह सब हम कैसे कर सकते हैं? वे कौन-से व्यावहारिक उपाय हैं जो आध्यात्मिकता की गहराई तक पहुँचने में हमारी सहायता कर सकते हैं? हमारी शुरुआत आध्यात्मिक उपदेश को परखने से और अपने लिये

अच्छी संगति का चुनाव करने से होती है। अच्छी संगति और ईमानदारी से किये प्रयास हमें ईश्वर की ओर ले जाएँगे। यही कारण है कि हर संत अपने शिष्यों के लिये अच्छी संगति के महत्त्व पर बल देता है। यह मनुष्य-स्वभाव की विशेषता है कि जिन्हें हम प्यार करते हैं हम भी उन्हीं जैसे बन जाते हैं। मनुष्य पर उसकी संगति का बहुत प्रभाव पड़ता है। लोभी और वासनामय व्यक्तियों की संगति हमें भी वैसा ही बना देती है। आध्यात्मिकता की ओर झुकाव रखनेवाले व्यक्तियों की संगति में हमारा झुकाव भी आध्यात्मिकता की ओर होने लगता है। सांसारिक लोगों की संगति में हम भी सांसारिक और अशांत हो सकते हैं, जब कि पारमार्थिक वृत्ति रखनेवालों की संगति में शांत और निर्मल बन सकते हैं।

आध्यात्मिक पुस्तकों को पढ़कर या ऐसे सत्संगों में जाकर जहाँ संतों के उपदेश की व्याख्या की जाती है, हमें बहुत सहायता मिलती है। यह निश्चित करने के लिये कि कौन-सा मार्ग हमारे लिये सही तथा सुविधापूर्ण है, हमें और अधिक खोज करनी होगी तथा कई अन्य मार्गों की छानबीन भी करनी होगी।

अपने लिये सर्वश्रेष्ठ मार्ग चुनने के लिये पूरी तरह से खोजबीन करना हमारे लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। अगर हम एक कमीज़ जैसी मामूली वस्तु को ख़रीदने से पहले कई कमीज़ें ध्यान से देखते हैं, तो यह महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले हमें कितना अधिक सतर्क होना चाहिये!

हमारे सामने कई मार्ग हैं और विभिन्न आध्यात्मिक गुरु हैं, प्रत्येक मार्ग का कोई न कोई विशेष उद्देश्य होता है। यदि हम ऐसे मार्ग की खोज में हैं जिसका उद्देश्य हमारी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाना, अधिक शक्ति को अर्जित करना, वैवाहिक जीवन को सफल बनाना, मन को शांत करना, संबंधों में सुधार करना, अच्छी सेहत पाना या सही व्यापारिक निर्णय लेना है, फिर तो बहुत-से ऐसे गुरु हैं जो यह सब पाने के लिये हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। इसके लिये हमें न तो उन कठिनाइयों को सहना है और न ही उस वचनबद्धता को निभाना आवश्यक है जो संतों की शिक्षा पर चलने के लिये अनिवार्य है। संतों का मार्ग केवल अपने आप को पहचानने तथा अंततः परमात्मा को पाने का मार्ग है।

यदि हम अच्छी तरह सोच-विचारकर यह निर्णय लेते हैं कि संतमत ही हमारे लिये उचित मार्ग है, तो हमें कम से कम एक वर्ष तक नशीले पदार्थों और शराब का प्रयोग न करने का और शाकाहारी भोजन ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिये। यह जानने के लिये कि क्या हम जीवन भर इस मार्ग पर चल पाएँगे, हमें एक ईमानदार और नैतिक जीवन बिताने का अभ्यास करना चाहिये।

यह मार्ग कोई क्लब, धर्म, संप्रदाय अथवा एक शौक़ पूरा करने का साधन नहीं है। इसमें एक विशेष प्रकार की संस्था के प्रति वफ़ादारी निभाने की सौगंध खाने की ज़रूरत नहीं है। इसमें कोई शुल्क (फ़ीस) नहीं लिया जाता। किसी प्रकार की हठधर्मिता, कर्मकांड, धार्मिक अनुष्ठान, पुजारी, पवित्र भवन, पवित्र धर्मग्रंथ, सामूहिक साधना तथा किसी अंधविश्वास की आवश्यकता नहीं है। किसी भी धर्म से संबंध रखनेवाला मनुष्य संतों के उपदेश पर चल सकता है।

आध्यात्मिकता के इस मार्ग में आध्यात्मिक गुरु और शिष्य के बीच एक आंतरिक और व्यक्तिगत संबंध स्थापित हो जाता है। गुरु यही चाहता है कि शिष्य शाकाहार भोजन पर बने रहने, नशीले पदार्थों और शराब से परहेज़ करने, एक नैतिक जीवन व्यतीत करने और प्रतिदिन ढाई घंटे भजन-सुमिरन करने के लिये वचनबद्ध रहे।

यह मार्ग गंभीर और परिपक्व व्यक्तियों के लिये है। बाईस वर्ष या इससे अधिक आयु का होने पर, कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिकता के इस मार्ग पर आने के लिये दीक्षा के लिये आवेदन कर सकता है।* किशोरावस्था की अपेक्षा इस आयु में व्यक्ति आसानी से किसी के प्रभाव

---

* 22 वर्ष – पुरुष, विवाहित जोड़े और वे महिलाएँ जिनके पति को नाम मिल चुका है।
25 वर्ष – अकेली महिलाएँ जो आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर हैं और ऐसी विवाहित महिलाएँ जिनके पति को नाम नहीं मिला।
27 वर्ष – जिन महिलाओं के गुज़ारे का निजी साधन नहीं है।
गर्भवती महिलाओं को केवल पहले चार महीने के दौरान ही नामदान दिया जाएगा। चौथे महीने के बाद नामदान की प्राप्ति के लिये उन्हें डिलिवरी तक प्रतीक्षा करनी होगी।

में नहीं आता। इसके अतिरिक्त इस आयु तक व्यक्ति ने काफ़ी दुनिया देख ली होती है और वह जान चुका होता है कि संसार उसे क्या दे सकता है। वह इतना समझदार हो चुका होता है कि यह निर्णय कर सके कि वह इस मार्ग को, जीवन जीने के ढंग के रूप में अपना सकेगा या नहीं।

पूर्ण संतुलन, चेतना की प्राप्ति

हमारी अपने प्रति भी कुछ ज़िम्मेदारी है। हमें अपना पूरा ध्यान रखना है। कोई दूसरा हमारे लिये इस मार्ग पर नहीं चल सकता। हमें स्वयं ही इस पर चलना है। आध्यात्मिक गुरु हमारी सहायता तो करेंगे, लेकिन प्रयास हमें ख़ुद ही करना है, बल्कि हम एक ऐसी मज़बूत नींव तैयार कर लें जिस पर हमारे आध्यात्मिक जीवन का निर्माण हो सके और हम आध्यात्मिकता के पाँच सिद्धांतों पर भरोसा कर सकें। जब हम अच्छे इनसान बनने का पक्का इरादा कर लेते हैं, उसी क्षण हमारी आध्यात्मिकता और हमारे अंतर के सर्वश्रेष्ठ गुणों का विकास होना आरंभ हो जाता है। यदि हमें इस मार्ग पर आगे बढ़ना है, तो सबसे पहले इन आध्यात्मिक मूल्यों को अपनी ज़िंदगी में उतारना होगा। हमें सीमित और तंग दायरे से बाहर निकलने की और अपने ज्ञान तथा सोच का दायरा खुला करने की आवश्यकता है।

आध्यात्मिकता के पाँच सिद्धांतों का सहारा लेने से मानसिक शांति और स्थिरता में विकास होगा, जिसके परिणामस्वरूप हम तनावरहित और आनंदमय जीवन का सुख प्राप्त करेंगे। हमें अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का विकास करने में आनंद मिलता है। हमारा मन इस नए और अधिक आनंदमय जीवन को बनाए रखने का प्रयत्न करेगा। फिर इसके अंदर पक्का विश्वास पैदा हो जाता है। इसी पक्के इरादे से अंदर अनुभव हुए आनंद को वह बार-बार प्राप्त करना चाहता है। हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्ति जितनी प्रबल होती जाती है, उतने ही अधिक हम संतुष्ट और मुक्त होते जाते हैं।

जब हम आध्यात्मिक मार्ग पर चलना आरंभ करेंगे, तो मन की दूषित प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे नष्ट हो जाएँगी। यदि हम इस मार्ग पर दृढ़ निश्चय के

साथ चलेंगे, तो जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाएगा और हम आध्यात्मिक रूप से बहुत दृढ़ बन जाएँगे। तब हमारे मन की शुभ प्रवृत्तियाँ हमारे सभी सर्वोत्तम गुणों को उजागर करने के लिये स्वतंत्र हो जाएँगी।

जब हम संतों के मार्ग पर स्थिर हो जाते हैं, तो हमारा आचरण संतुलित और सहज हो जाता है और हम अपने भीतर अद्‌भुत शांति, आनंद तथा चेतन अवस्था का सुख अनुभव करते हैं। तब ईश्वर प्राप्ति की संभावना एक वास्तविकता बन जाती है।

परमार्थ संबंधी पुस्तकें

राधास्वामी परंपरा

सारबचन राधास्वामी वार्तिक – हुज़ूर स्वामी जी महाराज
सारबचन संग्रह – हुज़ूर स्वामी जी महाराज

परमार्थी पत्र, भाग1 – बाबा जैमल सिंह जी

गुरुमत सार – महाराज सावन सिंह जी
गुरुमत सिद्धांत, भाग1, 2 – महाराज सावन सिंह जी
परमार्थी पत्र, भाग2 – महाराज सावन सिंह जी
प्रभात का प्रकाश – महाराज सावन सिंह जी
संतमत प्रकाश, भाग1 से 5 – महाराज सावन सिंह जी

आत्म-ज्ञान – महाराज जगत सिंह जी
रूहानी फूल – महाराज जगत सिंह जी

जीज़स क्राइस्ट का उपदेश, भाग1 (सेंट जॉन) – महाराज चरन सिंह जी
जीज़स क्राइस्ट का उपदेश, भाग2 (सेंट मैथ्यू) – महाराज चरन सिंह जी
जीवत मरिए भवजल तरिए – महाराज चरन सिंह जी
दिव्य प्रकाश – महाराज चरन सिंह जी
प्रकाश की खोज – महाराज चरन सिंह जी
पारस से पारस – महाराज चरन सिंह जी
सत्संग संग्रह, भाग1 से 6 – महाराज चरन सिंह जी
संतमत दर्शन – महाराज चरन सिंह जी
संत-मार्ग – महाराज चरन सिंह जी
संत संवाद, भाग1, 2, 3 – महाराज चरन सिंह जी

अध्यात्म मार्ग – जूलियन पी. जॉनसन
अनमोल ख़ज़ाना – शान्ति सेठी
अंतर की आवाज़ – सी॰ डब्लयू॰ सैंडर्स

अमृत नाम – महिन्दर सिंह जोशी
अमृत वचन – संकलित
उपदेश राधास्वामी – सहगल, शंगारी, भंडारी, ख़ाक
जागो रे प्यारे जागो (धारणाओं और ग़लतफ़हमियों से परे)
– सबीना ओबरॉय और बैवर्ली चैपमैन
जिज्ञासुओं के लिए – टी. आर. शंगारी
धरती पर स्वर्ग – दरियाई लाल कपूर
नाम सिद्धान्त – शंगारी, ख़ाक, भंडारी, सहगल
परमार्थ परिचय – हेक्टर एस्पॉण्डा डबिन
मत कोई भरम भूले संसार (एक नज़रिया) – सबीना ओबरॉय
मार्ग की खोज में – फ़्लोरा ई. वुड
मेरा सतगुरु – जूलियन पी. जॉनसन
रूहानी डायरी, भाग 1, 2 – राय साहिब मुंशीराम
संतमत विचार – टी. आर. शंगारी, कृपाल सिंह ख़ाक़
संतमत सिद्धांत
संत संदेश – शान्ति सेठी
संत समागम – दरियाई लाल कपूर
हउ जीवा नाम धिआए – हेक्टर एस्पॉण्डा डबिन
हक़-हलाल की कमाई
हंसा हीरा मोती चुगना – टी. आर. शंगारी

रूहानी परंपरा

कामिल दरवेश शाह लतीफ़ – टी. आर. शंगारी
गुरु अर्जुन देव – महिन्दर सिंह जोशी
गुरु नानक का रूहानी उपदेश – जे. आर. पुरी
तुलसी साहिब – जे. आर. पुरी, वी. के. सेठी, टी. आर. शंगारी
नाम-भक्ति: गोस्वामी तुलसीदास – के. एन. उपाध्याय, पंचानन उपाध्याय
परम पारस गुरु रविदास – के. एन. उपाध्याय
पलटू साहिब – राजेन्द्र कुमार सेठी, आर. सी. बहल
बोलै शेख़ फ़रीद – टी. आर. शंगारी
भाई गुरदास – महिन्दर सिंह जोशी

मीरा: प्रेम दीवानी – वी. के. सेठी
शम्स तब्रीज़ी – फ़रीदा मैलिकी
संत कबीर – शान्ति सेठी
संत चरनदास – टी. आर. शंगारी
संत तुकाराम – चन्द्रावती राजवाड़े
संत दरिया (बिहार वाले) – के. एन. उपाध्याय
संत दरिया (मारवाड़ वाले) – जनक गोरवानी
संत दादू दयाल – के. एन. उपाध्याय
संत नामदेव – जे. आर. पुरी, वी. के. सेठी, टी. आर. शंगारी
संत रज्जब – जनक गोरवानी
सरमद शहीद – टी. आर. शंगारी, पी. एस. आलम
सहजोबाई और दयाबाई: प्रभुप्रेम का रूप – टी. आर. शंगारी
साईं बुल्लेशाह – जे. आर. पुरी, टी. आर. शंगारी
सिंध की त्रिवेणी – जनक गोरवानी
स्वर अनेक, गीत एक – जूड्थ शंकरनारायण
हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती (अजमेर के ग़रीब नवाज़) – टी. आर. शंगारी
हज़रत सुलतान बाहू – कृपाल सिंह ख़ाक, जे. आर. पुरी
बिनती और प्रार्थना के शब्द – संकलित
संतों की बानी – संकलित

विश्व धर्मों में आध्यात्मिकता

अनंद साहिब – टी. आर. शंगारी
आसा की वार – टी. आर. शंगारी
जपुजी साहिब – टी. आर. शंगारी
जैन धर्म: सार सन्देश – के. एन. उपाध्याय
नितनेम की वाणियाँ और सलोक महला ९ – टी. आर. शंगारी
परमार्थी साखियाँ
बौद्धधर्म: उत्पत्ति और विकास – के. एन. उपाध्याय
मोक्ष के मार्ग: वैदिक परंपरा के अनुसार – के. शंकरनारायण
रामचरितमानस का संदेश – एस. एम. प्रसाद
शब्द की महिमा के शब्द

सिध गोस्ट और बारह माहा – टी. आर. शंगारी
सुखमनी – टी. आर. शंगारी

शाकाहार व्यंजन

वैष्णव भोजन, भाग1, 2
वैष्णव भोजन: ब्रिटिश ज़ायका

बच्चों के लिये पुस्तकें

एक नूर ते सभ जग उपजआ – विक्टोरिया जोन्ज़
आत्मा का सफ़र – विक्टोरिया जोन्ज़

विविध विषय

नारी को अधिकार दो – लीना चावला राजन
सहज की सौग़ात: डेरा बाबा जैमल सिंह

To order books on the internet, please visit : www.rssb.org
भारत में किताबें ख़रीदने के लिये कृपया नीचे लिखे पते पर लिखें:

राधास्वामी सत्संग ब्यास
बी. ए. वी. डिस्ट्रिब्यूशन सेंटर, 5 गुरु रविदास मार्ग
पूसा रोड, नई दिल्ली 110005